* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,९०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, वि॰ सं॰ २०४७, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१६, मई १९९० ई॰

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.०० रु॰
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.००रु॰
विदेशमें ६ पौंड
अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

श्रीसिद्धि-गणराज
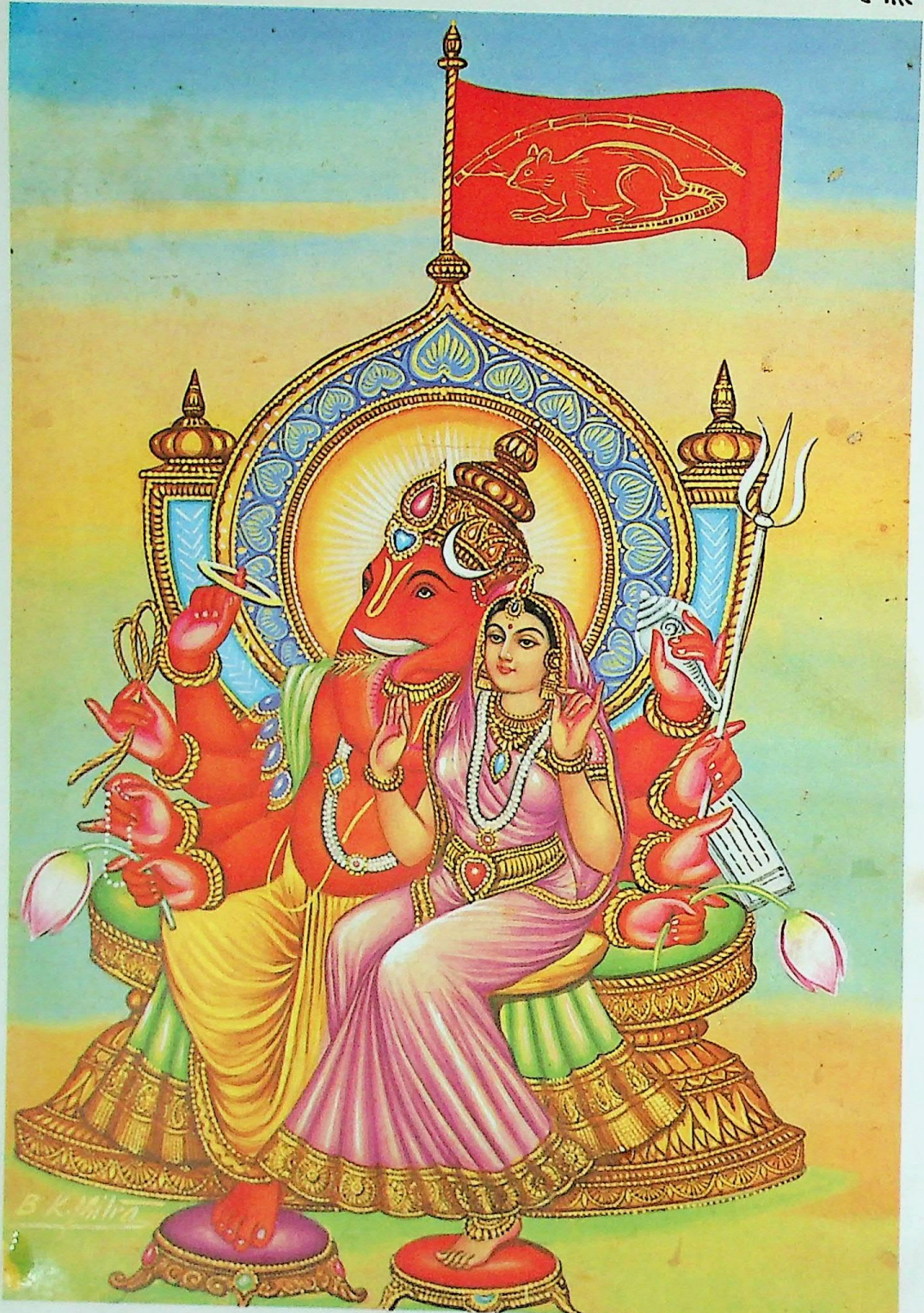
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

वर्ष ६४ } गोरखपुर, सौर वैशाख, वि॰ सं॰ २०४७, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१६, मई १९९० ई॰ { संख्या २
पूर्ण संख्या ७५९

श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम !

रक्तवर्ण शुभ, एकदन्त शुचि, ध्वज-मूषक, शोभित शशि भाल ।
वसु कर-कंज-युग, कम्बु, पाश, पुस्तक, त्रिशूलवर, चक्र, माल ॥
गज-मुख-धान्य-मञ्जरी राजत, विपद-विघ्न-वारण, शुभधाम ।
अखिल अमङ्गलहर, हर-सुत, श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम ॥

कल्याण

याद रखो—देवताकी उपासनाके विभिन्न प्रकार हैं—गुणातीत, सात्त्विक, राजस, तामस और मिश्रित। इसीके अनुसार उपासकोंमें भी भेद है और उपासकोंकी रुचि, अधिकार, मनोवृत्ति, मान्यता, श्रद्धा, सिद्धान्त तथा मनोरथके अनुसार ही उपास्यदेव भी विभिन्न हैं।

याद रखो—भगवान् परमतत्त्व परमात्मा एक ही हैं। उनके प्रधानतया तीन रूप हैं—निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार। इन तीनोंके लीलाभेदसे अनेक विभिन्न नाम-रूप हैं। इन्हींकी उपासना होती है। निर्गुण-निराकार ब्रह्मतत्त्वकी उपासना नहीं मानी जाती, पर जबतक तत्त्वकी उपलब्धि होकर एकात्मताकी स्थिति न अनुभूत हो, तबतक उपासना होती है ही। उसे ब्रह्मोपासना कहें, आत्मोपासना कहें या अहंग्रह-उपासना। 'वाद' भी चाहे कोई-सा माना जाय— अजातवाद, विवर्तवाद, आभासवाद या परिणामवाद—उपासना सभीमें है। सगुण-निराकार और सगुण-साकारकी उपासनाके तो इतने प्रकार हैं कि वेदोंसे लेकर संतोंकी वाणीतक सबमें विविध विचित्र उपासनाओंके प्रसङ्ग तथा पद्धतिनिरूपण भरे पड़े हैं।

याद रखो—देवताकी उपासनामें उपासकका जैसा भाव होता है, उसीके अनुसार उपासना होती है और उसीके अनुसार फल भी मिलता है। जीवन्मुक्ति, कैवल्य-मोक्ष, दिव्य नित्य-भगवद्धामकी प्राप्ति, भगवत्प्रेमका नित्य आस्वादन, भगवत्सेवाधिकार, स्वर्गप्राप्ति, देवलोकोंकी प्राप्ति, पितर या प्रेतलोककी प्राप्ति—ये सभी विभिन्न उपासनाओंके ही फल हैं। लोग जडोपासना या भोगोपासनामें भी लगे ही हैं—पर वह वस्तुतः उपासना नहीं है—प्रमादमात्र है।

याद रखो—सगुण-साकारकी उपासनामें भारतीय सनातनधर्मके अनुसार शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और शक्ति—प्रधानतया ये पाँच उपास्यरूप माने जाते हैं। इनमें भी सौम्य-रौद्र अनेक रूप हैं। सात्त्विक जन सौम्यरूपकी उपासना करते हैं, राजस सौम्यासौम्यमिश्रित रूपकी और तामस रौद्र रूपकी। भगवान् विष्णुका नारायणरूप सौम्य है, असुरसंहारी विष्णुरूप सौम्यासौम्य है और नरसिंहरूप रौद्र है। भगवान् शिवका तपस्वी-रूप शान्त है, विवाहके समयका रूप (शिवपुराणके अनुसार) सौम्य है, सर्वसंहारक भैरव तथा रुद्ररूप रौद्र है। शक्तिका लक्ष्मी-सरस्वती-सीता-राधा-रूप सौम्य है, दुर्गा-रूप सौम्यासौम्य है, काली-छिन्नमस्ता आदि रूप रौद्र हैं। इसी प्रकार इनकी पूजा-पद्धतियोंमें सात्त्विक-राजस-तामस-भेदसे भावों तथा सामग्रियोंका भेद है।

याद रखो—सौम्य तथा शान्तरूपकी उपासना ही परम श्रेयस्कर तथा वाञ्छनीय है। जिस रूपकी उपासना होगी, उसीके गुण उपासकमें आयेंगे, क्योंकि उसे भावसे वैसा ही बनकर उपासना करनी पड़ेगी। अतएव भगवान्‌के मधुरतम रसमय आनन्दमय स्वरूपकी उपासना करनेमें आरम्भसे ही माधुर्य, रस, आनन्द, शान्ति, सद्भाव, सद्गुण आदिकी प्राप्ति होती रहती है और अन्तमें उपासक उस भगवत्प्रेम-सुधा-सागरमें निमग्न हो जाता है। फिर उसमें जो कुछ क्रियाएँ होती हैं, सब अखिल प्रेमानन्दरसामृत-मूर्ति भगवान्‌के उस महान् लीलासमुद्रमें लहरियाँ होती हैं।

याद रखो—अनेक देवोंकी उपासना या साधना विभिन्न रूपोंमें हो सकती है, पर यह निश्चय सदा बना रहना चाहिये कि सत्य एक ही है, उपास्यदेव भगवान् एक ही हैं, वे ही अनन्त नाम-रूपोंसे उपासित होते हैं। जैसे किसीको 'जगन्नाथपुरी' जाना है, तो पुरी एक ही है, पर पुरी जानेवाले लोग अपनी विभिन्न दिशाओंसे भिन्न-भिन्न मार्गोंसे तथा अपनी-अपनी रुचि, अधिकार तथा क्षमताके अनुसार विभिन्न वाहनोंके द्वारा जाते हैं। कोई पैदल ही जाते हैं, कोई बैलगाड़ी, मोटरगाड़ी, रेलगाड़ी या वायुयानसे यात्रा करते हैं। पहुँचते सब देर-सबेर एक ही जगह हैं। इसी प्रकार श्रद्धा-विश्वासके साथ अपने-अपने अधिकार, रुचि, शक्ति, बुद्धि, अभ्यास, इच्छा तथा स्वीकृत मार्गसे अपनी क्षमताके अनुसार तीव्र या मन्द गतिसे चलते रहें। यदि मुख उधर है और चल रहे हैं तो पहुँच ही जायँगे, भगवान् सहायता भी करेंगे ही।

'शिव'

महनीय चरित्र—

जलाधिनाथ भगवान् वरुण

स्वरूप-परिचय

वरुण देवता जलके अधिष्ठाता देवता हैं। वे समुद्रोंके स्वामी हैं। उनमें सूर्यके समान प्रकाश है। वे अत्यन्त दयालु एवं गौरमृगके समान गतिशील तथा बलवान् हैं। हृदयसे गम्भीर, जलके विधायक, अपने आश्रितोंको दुःखोंसे मुक्त करनेवाले तथा संसारके भी स्वामी हैं[१]। वे अपनी आराधना करनेवालोंके समस्त कल्याणोंका विधान करके उनका पालन-पोषण करते हैं। वे शत्रुओंके नाशक, अर्यमा एवं मित्र देवताके सहचर तथा सूर्यरूपी नेत्रके द्वारा संसारके दर्शक और साक्षी हैं। वे भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले तथा धन प्रदान करनेवाले हैं। **'बहुधनं वृषणं कामानां वर्षकं बृहन्तं महान्तम्**[२]।'

भगवान् वरुण दिन-रात्रि, चन्द्रमा, ऋतुओं, बारह महीनों, जल, नदियों तथा समुद्रके भी संचालक हैं। ये सभी उन्हींकी आज्ञासे प्रवाहित होते हैं। इसीलिये एक प्रकारसे वेदोंमें वरुण देवताको परमात्माका स्वरूप ही माना गया है[३]। वरुणदेव सर्वविध महान् हैं। वैदिक सूक्तों—ऋग्वेदके सप्तम मण्डलके ८२से लेकर ८८तकके सूक्तोंमें वरुणदेवकी महती प्रशंसा की गयी है और उनमें उनके प्रशंसनीय स्वरूप, आचार एवं कर्तव्यका भी उल्लेख हुआ है। उनका मुख अग्निके समान तेजस्वी है तथा वे सोमरसके अभिषव (सोमरस कूटनेवाले पत्थर) पर खड़े रहते हैं। उनका रूप अत्यन्त प्रशस्त है। वे याचकों एवं स्तावकोंकी प्रार्थनापर उन्हें दर्शन भी देते हैं—

अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धो ऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात्॥

(ऋ॰ ७।८८।२)

आचार्य यास्कने वरुण देवताको द्युलोक, अन्तरिक्षलोक एवं उभयस्थानीय देवताओंमें परिगणित किया है। 'वरुण' शब्दकी व्याख्यामें उन्होंने कहा है कि 'जो मेघजालके द्वारा द्युलोक एवं अन्तरिक्षलोकका वारण करता है, वही वरुण है[४]। साथ ही बताया है कि सम्पूर्ण विश्व तथा चौदह भुवनोंके राजा भी वे ही हैं। इसके उदाहरणमें आचार्य यास्कने निम्न मन्त्र उद्धृत किया है—

नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम॥

(ऋ॰५।८५।३)

शतपथ ब्राह्मण (१३।३।६।५) तथा ऋग्वेद (१।१५२।१) में वरुणदेवका वर्ण श्वेत, सिर केशविहीन, नेत्र पीले, अवस्था प्रौढ़ एवं परिधान अत्यन्त द्युतिमान् निरूपित किया गया है। उनका रथ सूर्यके समान प्रकाशमान है। रथके घोड़े बलिष्ठ एवं सतर्क हैं। मित्र एवं वरुणदेव दोनों एक साथ बैठकर अन्तरिक्ष एवं द्युलोकमें भ्रमण करते हैं।

पुराणोंके अनुसार वरुणदेव पश्चिम दिशाके स्वामी तथा कश्यप-अदितिके पुत्र हैं। द्वादश आदित्योंमें इनकी गणना है[५]। इनकी नगरीका नाम 'सुखावती' या 'वसुधानगर', वनका नाम वैभ्राजक तथा छत्रका नाम आभोग है। इनका निवास समुद्रके मध्यमें है।

वरुण देवताका जलाधिपति-पदपर अभिषेक

महाभारत, शल्यपर्व (अ॰ ४७) में वरुण देवताके जलाधिपतिपदपर अभिषिक्त होनेकी कथा विस्तारसे आयी है, जिसका भाव इस प्रकार है—

पूर्वकल्पकी बात है, जब आदिकृतयुग चल रहा था, उस समय सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् वरुणके पास जाकर कहा—'प्रभो! जैसे देवराज इन्द्र सदा भयसे हमलोगोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी समस्त सरिताओंके अधिपति होकर हमारी रक्षा कीजिये। हे देव! आपका

१-ऋग्वेद ६।८७।६

२-ऋग्वेद ७।८८।१ मन्त्रके चौथे पदका सायण-भाष्य।

३-ऋग्वेद २।२८।१-४

४-'वृणोतीति सतः'—आवृणोतीति ह्ययं मेघजालेन वियत्।' (निरुक्त १०।१।३)

५-अदित्यां द्वादशादित्याः सम्भूता भुवनेश्वराः। धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च॥ (महा॰, आदि॰ ६५।१४-१५)

निवासस्थान समुद्रमें होगा और यह समुद्र सदा आपके वशमें रहेगा। चन्द्रमाके साथ आपकी भी हानि और वृद्धि हुआ करेगी। इसपर वरुणदेवने अपनी स्वीकृति सहर्ष देकर जलोंका अधिपति तथा देवगणों और प्रजाओंका रक्षक होना स्वीकार किया। उनकी अनुमति पाकर देवताओंने एकत्र होकर समुद्रवासी वरुणदेवको जलराशिके अधिष्ठातृपदपर अभिषिक्त किया और उनका पूजन किया। तदनन्तर देवगण अपने-अपने स्थानोंको चले गये। देवताओंद्वारा अभिषिक्त होकर महायशस्वी वरुणदेव देवगणोंकी रक्षा करनेवाले अपने मित्र इन्द्रके समान सरिताओं, सागरों, नदों तथा सरोवरोंका भी पालन करने लगे। सरस्वती नदीका समीपवर्ती वह स्थान जहाँपर वरुणदेवका देवताओंके द्वारा अभिषेक किया गया 'तैजस-तीर्थ' के नामसे विख्यात हुआ।

वरुण देवताका परिवार

पाणिनि (४। १। ४९) के अनुसार इनकी स्त्रीका नाम 'वरुणानी' है। पुराणों तथा महाभारतके अनुसार इनकी एक अन्य स्त्री 'गौरी' भी कही गयी हैं (महाभा०, उद्योग० ११७। ९)। इनके अतिरिक्त इनकी एक तीसरी पत्नी चर्षणी भी बतायी गयी है, जिसके गर्भसे दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें रुद्रगणोंद्वारा मारे गये भृगु पुनः उत्पन्न हुए थे।—**'चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः'** (भा० ६। १८। ४)। वसिष्ठ और अगस्त्य भी इन्हीं वरुणदेवके पुत्र कहे गये हैं। (भाग० ६। १८। ५)। इनकी ज्येष्ठ पत्नी देवीने बल नामक एक पुत्रको और सुरा नामवाली कन्याको जन्म दिया था। (महा०, आदि ६६। ५२)। वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड (४६। १६) तथा उत्तरकाण्डमें[1] वाल्मीकि ऋषिको तथा महाभारत[2] एवं विष्णुधर्मोत्तर आदि पुराणोंमें पुष्करको इनका पुत्र कहा गया है। इनकी गुणार्णवा नामक एक पुत्रीका उल्लेख ब्रह्मपुराण (अ० ८८) में हुआ है, जिसका विवाह उन्होंने राजा जनकके साथ किया।

राजा हरिश्चन्द्रपर वरुणदेवकी कृपा

ऋग्वेद (१। २४), ऐतरेय ब्राह्मण (अ० ३३) में राजा हरिश्चन्द्र तथा शुनःशेपका आख्यान आया है, जिसका उपबृंहण देवीभागवत (७। १४—१७) आदि पुराणोंमें विस्तारसे हुआ है, जो इस प्रकार है—

इक्ष्वाकुवंशी राजा हरिश्चन्द्रने अनपत्यतासे दुःखी होकर महर्षि वसिष्ठजीसे पुत्र-प्राप्तिका उपाय पूछा। वसिष्ठजीने कहा—'राजेन्द्र! तुम यत्नसहित जलाधिपति वरुणकी आराधना करो, क्योंकि उनकी अपेक्षा संतानदायक अन्य कोई देवता नहीं है। उनके अनुग्रहपर तुम्हें अवश्य पुत्र-प्राप्ति होगी, इसमें संदेह नहीं।' गुरुसे निर्देश प्राप्तकर राजा हरिश्चन्द्र गङ्गाके पवित्र तटपर पाशधर वरुणदेवके ध्यानमें निमग्न होकर कठोर तपस्या करने लगे। उनकी तपस्यासे वरुणदेव प्रसन्न हुए और उन्हें पुत्र-प्राप्तिका वर दिया। कुछ समय बाद राजाको वरदानस्वरूप रोहित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

गाण्डीव धनुषका इतिहास

भगवान् वरुण जलराशिके अधिष्ठातृदेव हैं। समुद्र, जिसे रत्नोंका आकर कहा गया है, वहीं इनका निवास है। यद्यपि भगवान् वरुणका मुख्य अस्त्र 'पाश' कहा गया है तथापि उनके अन्य भी अनेक अस्त्र-शस्त्र हैं, जिनमें एक दिव्य शार्ङ्ग (गाण्डीव) धनुष[3] भी था, जो समुद्र-मन्थनके समय चौदह रत्नोंके साथ उद्भूत हुआ। इसी वैष्णव धनुषको भगवान् विष्णुने ग्रहण किया। इसीलिये वे शार्ङ्गी, शार्ङ्गधन्वा तथा शार्ङ्गपाणि आदि नामोंसे विख्यात हैं। इसके द्वारा भगवान् विष्णुने अनेक असुरोंका संहार किया। इस धनुषका एक लम्बा इतिहास है, जो यहाँ संक्षिप्तमें दिया जा रहा है—

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१। ६५—६७) में एक कथा है—एक बार देवताओंके मनमें यह जाननेकी इच्छा हुई कि

१-यहाँ महर्षि वाल्मीकि भगवान् श्रीरामसे सीताजीकी पवित्रताके सम्बन्धमें कह रहे हैं कि मैं प्रचेता (वरुण) का दसवाँ पुत्र हूँ—
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन। न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ॥ (वा० रा०, उ० ९६। १९)

२-उद्योगपर्व ९८। १२

३- इस धनुषकी यह भी विशेषता है कि पाणिनि (५। २। ११०) आदिके अनुसार यह ह्रस्व इकारान्त और दीर्घ ईकारान्त तो है ही, पुँल्लिंग (गाण्डीवः) तथा नपुंसकलिंग (गाण्डीवम्) दोनोंमें प्रयुक्त होता है।

भगवान् शङ्कर और विष्णुमें अधिक बली कौन है ? यह बात उन लोगोंने ब्रह्माजीसे कही। ब्रह्माजीने उन लोगोंसे इन दोनों महान् देवताओंमें युद्ध कराकर निर्णय करनेका प्रस्ताव रखा। फिर क्या था, सबने मिलकर उन्हें लड़ा दिया। यह युद्ध बड़ा ही लोमहर्षक एवं भयावह था, उसे देखकर विश्वके सभी प्राणी डर गये। तब ब्रह्माजीने तथा अन्य देवताओं एवं सभी ब्रह्मर्षियोंने उन दोनोंके पास जाकर प्रार्थना की कि 'आप दोनों विश्वके स्वामी हैं। आपलोगोंका यह युद्ध उचित नहीं है। आप दोनोंके युद्धका निर्णय मात्र इतनेसे ही कर लिया जाय कि आप दोनों एक-दूसरेके धनुषको चढ़ा दें। इसपर भगवान् विष्णुने भगवान् शिवके पिनाक धनुषको तत्काल आरोपित कर दिया, पर भगवान् शङ्कर प्रयत्न करनेपर भी वैष्णव धनुषको न चढ़ा सके[१]। इससे भगवान् शङ्करसे भगवान् विष्णुका उत्कर्ष अधिक समझकर सबने भगवान् विष्णुकी बड़ी स्तुति एवं प्रशंसा की। देवताओंद्वारा कृत भगवान् शङ्करकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने भगवान् शङ्करसे कहा कि वस्तुतः हम और आप दोनों एक ही हैं। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जो आपकी भक्ति एवं उपासना करते हैं, वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं और मेरे ही लोकको प्राप्त होते हैं[२]।

इधर अपने धनुषको पराभूत देखकर भगवान् शङ्कर कुछ उदास हो गये और उन्होंने उसे मिथिलानरेश देवरात जनकके क्षेत्रमें फेंक दिया (मतान्तरसे उन्हें दे दिया)। शिवजीके धनुष फेंक देने तथा उदास होनेपर भगवान् विष्णुने भगवान् शिवसे कहा कि आप उद्विग्न न हों, मेरे इस शार्ङ्गधनुषको आप अपने पास रखें। इसे आप भार्गवनन्दन जमदग्निको दे देंगे। उनसे उनके पुत्र परशुराम लेंगे। वे उससे पातालवासी असुरोंका संहार करके श्रीरामको दे देंगे। अपना कार्य समाप्तकर, रावण आदिका वधकर श्रीराम उसे पुनः वरुणको दे देंगे। देवकार्यार्थ अर्जुन उसे महात्मा वरुणसे ग्रहण करेंगे[३]। आपने अपना जो धनुष देवरात जनकके क्षेत्रमें फेंका है, उस धनुषसे भी उनका (जनकका) एक महान् कार्य सम्पन्न होगा।

भगवान् विष्णुसे उनके शार्ङ्गधनुषको प्राप्तकर भगवान् शिव प्रसन्न हुए और उन्होंने यथासमय उसे ऋचीकनन्दन जमदग्निको धनुर्विद्याके अभ्यास करते समय दे दिया। बादमें परशुरामजी भगवान् शङ्करके पास अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखनेके लिये पहुँचे और उनसे यथाविधि विद्या ग्रहण की। एक दिन इन्द्रने भगवान् शङ्करके पास आकर पातालवासी दैत्योंका वध करनेके लिये परशुरामको वहाँ भेजनेकी प्रार्थना की। भगवान् शङ्करने भी 'तथास्तु' कहकर परशुरामजीको बुलाया और कहा कि तुम पातालमें जाओ और वहाँके दुराचारी असुरोंका संहार करो। मैंने भगवान् विष्णुके शार्ङ्गधनुषको तुम्हारे पिता जमदग्निको दे दिया है। उनसे तुम धनुष ले लेना, साथ ही इस अक्षय तूणीरको भी ले लो। इनके सहारे तुम राक्षसोंको मार डालो और फिर तूणीर देकर भगवान् शङ्करने परशुरामसे कहा कि कार्य हो जानेपर इस तरकशको महर्षि अगस्त्यको दे देना और वे उसे अति यशस्वी राघवेन्द्र श्रीरामको दे देंगे[४]। तुम भी श्रीरामके दर्शनके बाद शस्त्र मत धारण करना। तुम्हारा प्रचण्ड वैष्णव तेज रामके मिलते ही देवकार्यार्थ उनमें ही प्रविष्ट हो जायगा।

इसके बाद परशुरामजीने वैसा ही किया। इधर भगवान् विष्णुके कथनानुसार देवरातके कुलमें उत्पन्न सीरध्वज जनककी पुत्री सीताने पूजास्थलमें जाकर भूमि लीपनेके समय पिनाक धनुषको उठाकर दूसरी जगह रख दिया, तो सीतासे अधिक पराक्रमी वरकी खोजमें जनकने यह प्रतिज्ञा की कि 'जो इस पिनाक धनुषको उठाकर तोड़ देगा, उससे ही सीताका विवाह होगा।' यद्यपि उस धनुषको देवता, दनुज और रावण

१-यह कथा वाल्मीकीय रामायणके ७५वें सर्गमें भी प्रायः इसी प्रकार आती है। उस कथामें अधिक इतना ही है कि शैव और वैष्णव धनुषमें युद्ध हुआ, जिसमें विष्णुके हुंकारसे शिवजीका धनुष तेजोहीन हो गया।

२-(क) योऽहं स देवः परमेश्वरस्त्वं योऽहं स देवः प्रपितामहश्च। (विष्णुधर्म० १। ६६। २६)

(ख)-भक्त्या च नित्यं तव पूजयन्ति स्थानं हि तेषां सुलभं मदीयम्॥ (विष्णुधर्म० १। ६६। २९)

३-तच्चापरलं भुवि राघवाय प्रदास्यते राम इति श्रुताय। कृत्वा स रामोऽपि हि तेन कर्म प्रदास्यते तद्वरुणाय चापम्॥
तस्मात् समादास्यति फाल्गुनोऽपि देवार्थकार्यैकरतिर्महात्मा। (विष्णुधर्म० ६७। ३१-३२)

४-महर्षि अगस्त्यद्वारा श्रीरामको अक्षय तरकश आदि प्रदान करनेकी कथा वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्डके १२वें अध्यायके अन्तमें आती है।

आदि राक्षस भी नहीं हिला-डुला सके, किंतु भगवान् रामने उसे तोड़ डाला। धनुष टूटनेकी बात सुनकर क्रोधाविष्ट हो परशुराम वहाँ तत्काल पहुँच गये और थोड़ी देर विवादके पश्चात् परशुरामने रामको वैष्णव धनुष देकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ानेको कहा। रामके हाथमें जाते ही उसकी प्रत्यञ्चा स्वतः चढ़ गयी और परशुरामका तेज भी राममें प्रविष्ट हो गया। परशुराम पुनः महेन्द्राचलपर तप करने चले गये और रामने यथासमय रावण आदि राक्षसोंका वधकर ११ हजार वर्षोंतक राज्यकर सम्पूर्ण विश्वपर राज्य किया। सांतानिक लोकको जाते समय उन्होंने इस धनुषको पुनः वरुणको ही दे दिया। महाभारत-युद्धसे कुछ समय पूर्व खाण्डवदाहके समय अग्निकी प्रार्थनापर वरुणने पुनः उसे अर्जुनको प्रदान किया[१]। अर्जुनने उसीके द्वारा अपने समग्र शत्रुओं तथा महाभारत-युद्धमें कौरवोंको भी जीता और अन्ततोगत्वा महाप्रस्थानके समय उन्होंने भी उसे वरुणदेवके माँगनेपर उन्हें दे दिया[२]। ये सारी बातें महाभारतमें स्थान-स्थानपर विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट हैं।

इस प्रकार रामायण, महाभारत तथा विशिष्ट इतिहास-ग्रन्थोंके युद्धों तथा कथानकोंका आधार एवं उनके मुख्य नेताओंके विजयश्रीका मूल आधार यह शार्ङ्ग या गाण्डीव धनुष ही है, जो महात्मा वरुणके द्वारा ही समय-समयपर लोगोंको प्राप्त होता रहा और पुनः उन्हींके हाथमें लौटता रहा। इस सम्पूर्ण वृत्तान्तसे महात्मा वरुणदेवकी अलौकिकता एवं श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

भगवान् वरुणदेवका दिव्य ज्ञानोपदेश

ब्रह्मपुराणमें वरुणको राजा जनकका श्वशुर कहा गया है। वरुणकी पुत्री गुणार्णवा यथानाम तथा गुणोंसे संयुक्त थी। उन्होंने उसका विवाह राजा जनकके साथ कर दिया। महर्षि याज्ञवल्क्य जनकके पुरोहित थे। एक दिन राजा जनकने महर्षि याज्ञवल्क्यसे पूछा कि ऋषि-मुनियोंने भोग और मोक्ष दोनों ही साधनोंकी प्रशंसा की है। अन्तर इतना ही है कि भोग तो अन्तमें क्लेशदायक होते हैं, परंतु मुक्ति नित्य है। आप कोई इस प्रकारका उपाय बतायें, जिसमें एक साथ ही भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हों। भोगों और आसक्तियोंका त्याग करके मुक्ति प्राप्त करना अत्यन्त दुस्साध्य है। अतः जिससे सुख-भोगके साथ-साथ मुक्ति भी प्राप्त हो सके, वही उपाय बताइये। इसपर महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा—'राजन्! देवाधिदेव भगवान् वरुण आपके श्वशुर, हितैषी एवं गुरुजन भी हैं। उन्हींके पास चलकर इस प्रश्नका समाधान करना चाहिये। वे दोनों ही वरुणके यहाँ पहुँच गये और उन्होंने उनसे मुक्तिका उपाय पूछा। इसपर वरुणने कहा कि मुक्ति दो प्रकारसे प्राप्त होती है—एक कर्मानुष्ठानसे तथा एक कर्मके परित्यागसे। वेदोंमें यह निश्चय किया गया है कि कर्मके त्यागकी अपेक्षा कर्मानुष्ठान श्रेष्ठ है। धर्म-अर्थ आदि चारों पुरुषार्थ कर्मसे ही प्राप्त होते हैं। कर्मानुष्ठानसे सभी असाध्य कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये मनुष्योंको श्रद्धा एवं विधिसे वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करते रहना चाहिये। इससे इस लोकमें कई प्रकारके भोगों तथा परलोकमें मोक्षकी प्राप्ति होती है। भिन्न-भिन्न वर्णों एवं आश्रमोंके धर्म-कर्म अलग-अलग प्रविभक्त हैं। उनमें भी गृहस्थ-आश्रम विशेष महत्त्वका है। इस आश्रममें भोगोंका विहित उपयोग और निष्कामकर्मके अनुष्ठानसे मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है।

इसपर महाराज जनक तथा महर्षि याज्ञवल्क्यने वरुणदेवकी विशेष पूजा-अर्चनाकर उनसे पुनः पूछा—'क्या संसारमें कोई ऐसा विशेष तीर्थ भी है जो भोग और मोक्ष दोनोंको प्रदान करनेमें आत्यन्तिक रूपसे समर्थ हो?' इसपर वरुणने गौतमी-गङ्गाके तटपर स्थित वरुणा तीर्थकी प्रशंसा करते हुए उसे भोग-मोक्षदायक बताया। भगवान् वरुणका यह उपदेश सुनकर महाराज जनकने सभी आवश्यक उपकरणों-सहित भारतके मध्य स्थान दण्डकवनके भीतर गोदावरी-तटपर पहुँचकर महर्षि याज्ञवल्क्यके आचार्यत्वमें अनेकों अश्वमेधादि यज्ञ किये। जनकका यज्ञ-स्थान होनेसे उस तीर्थका नाम 'जनस्थान' भी पड़ गया और वहीं 'वारुणतीर्थ' भी स्थित है। वहाँ स्नान-दान करनेका महत्त्व अत्यधिक है। उस तीर्थके स्मरण-कीर्तन एवं श्रवणसे ही मनुष्य भोग-मोक्षका भागी हो जाता है[३]। —क्रमशः

१-आदिपर्व २२५। २-महा० महाप्रास्थानिक पर्व १।४१-४२। ३-ब्रह्मपुराण अ० ८८।

विश्वेदेवगण और उनकी महिमा

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम्०ए०, पी०-एच्०डी०)

[विशेषाङ्क पृ० सं० २६८ से आगे]

विश्वेदेवोंकी श्राद्धमें आत्यन्तिक आवश्यकता

इस सम्बन्धमें स्कन्दपुराणके नागरखण्डमें एक सुन्दर कथाका उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका अत्यन्त संक्षिप्त सारांश एवं महत्त्व यहाँ दिया जा रहा है—

प्राचीन कालमें वृत्रासुर-संग्राममें मारे गये वीरोंके निमित्त देवराज इन्द्रने गया-तीर्थमें पहुँचकर गयाकूपके पास श्राद्ध-तर्पणका कार्य प्रारम्भ किया और अग्निष्वात्त आदि पितरोंको श्राद्ध-मन्त्रोंके द्वारा आहूतकर शस्त्रके द्वारा उपहत प्राणियोंके उद्देश्यसे महालयमें चतुर्दशीको विधिवत् श्राद्ध आरम्भ किया, किंतु उन्हें विश्वेदेवगण नहीं दिखायी पड़े। तबतक वहाँ देवर्षि नारदजी आ गये। इन्द्रने उनसे पूछा—'देवर्षे! मेरे द्वारा गया-जैसे इस पवित्रतम श्राद्धतीर्थमें भी श्राद्ध करनेपर विश्वेदेवगण यहाँ क्यों नहीं आये? मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, कृपाकर आप मुझे इसका कारण बतानेकी कृपा करें।' इसपर नारदजीने कहा—'यहीं थोड़ी दूरपर ब्रह्माजी भी श्राद्ध कर रहे हैं और विश्वेदेवगण वहीं विनियुक्त हैं। आप बिना विश्वेदेवोंके उपयोगके ही एकोद्दिष्ट-विधानसे श्राद्ध सम्पन्न कर लें। इन्द्रके ऐसा करनेपर सभी मृत प्राणी परमगतिको प्राप्त हो गये और उन्होंने ब्राह्मणोंसे कहा— 'श्राद्धकी रक्षाके लिये विश्वेदेवोंकी व्यवस्था की गयी थी, किंतु अब मैं भी स्वयं इनके उपयोगके बिना ही श्राद्ध किया करूँगा।' इन्द्र ऐसा कह ही रहे थे कि विश्वेदेवगण वहाँ पहुँच गये और कहने लगे—'हे देवेन्द्र! ब्रह्माजीने हमलोगोंको पहलेसे ही अपने श्राद्धकर्ममें आवाहन कर बुला लिया था, आपने हमलोगोंको पीछे आहूत किया, इसलिये हम यदि आपके यहाँ समयपर नहीं आ पाये तो इसमें हम सब रंचमात्र भी दोषी नहीं हैं, फिर आप श्राद्धकर्मसे हमलोगोंका निष्कासन कैसे कर रहे हैं? इस प्रकार दुःखी होकर विश्वेदेवोंने इन्द्रसे निवेदन किया और उनकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, जिससे पृथिवी भी गीली हो गयी, किंतु इन्द्रका हृदय नहीं पसीजा। इधर उनके उष्ण अश्रुवाष्पकणोंसे बड़े-बड़े असंख्य अण्डे उत्पन्न हो गये और उनसे अनन्त राक्षसतुल्य क्रूर पुरुष प्रकट हो गये। विश्वेदेवोंने उन्हें संसारके विनाशके लिये आदेश दिया और कहा कि 'जहाँ भी तुमलोग हमलोगोंके बिना श्राद्ध होते देखो, वे कव्यादि वस्तुएँ तुमलोगोंका आहार बनेंगी। तुमलोग क्षिति (पृथिवी) के ऊष्म (गर्म) अण्डोंसे प्रकट हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'कूष्माण्ड' होगा। तुमलोग स्वच्छन्द विचरण करते हुए अपना कार्य करो।' इतना कहकर विश्वेदेवगण अन्तर्धान हो गये।

इस तरहसे सर्वत्र कूष्माण्डोंद्वारा अनर्थकारी विनाश होते देखकर ब्रह्माजीने सोच-विचारकर विश्वेदेवों तथा इन्द्रको बुलाया और सभीको समझा-बुझाकर यह व्यवस्था दी कि आजसे विश्वेदेवोंके बिना कोई भी श्राद्ध (एकोद्दिष्ट छोड़कर) सम्पन्न नहीं हो सकेगा और यदि ऐसा होता है तो वह श्राद्ध केवल कूष्माण्डोंकी तृप्तिका कारण बनेगा। जिन श्राद्धोंमें पात्र-रक्षा, भस्मरेखा और कूष्माण्ड-मन्त्रोंका प्रयोग नहीं होगा और अग्नि तथा जलकी व्यवस्था नहीं होगी, श्राद्ध-वस्तुएँ तथा श्राद्ध-पाक अभिमन्त्रित जलके द्वारा सम्प्रोक्षित नहीं होगा, उन सबको ये कूष्माण्डलोग सुखपूर्वक भक्षणकर तृप्त हो जायँगे—

अवैश्वदेविकं श्राद्धमन्यत् कूष्माण्डतृप्तये।
भविता भस्मरेखाभिः पात्ररक्षा च यत्र न॥
कूष्माण्डीभिरतोरग्निः सलिलैरभिमन्त्रितैः।
अप्रोक्षितः श्राद्धपाको भवद्भिर्भुज्यतां सुखम्॥

(चतुर्वर्गचिन्तामणिके श्राद्धकल्पमें देवतानिर्णय-प्रकरणमें नागरखण्डके वचन)

ऐसा कहकर पितामह ब्रह्माने विश्वेदेवोंको प्रसन्न कर लिया और वे वहीं अन्तर्धान हो गये और तभीसे कोई भी श्राद्ध (नित्य एकोद्दिष्ट छोड़कर) बिना वैश्वदेवके नहीं होता।

विश्वेदेवोंकी महर्षि त्रितपर अनुकम्पा

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके १०५—१०७ इन तीन सूक्तोंमें प्रभास क्षेत्रके एक सूखे कूपमें गिरकर वहींसे मानसिक यज्ञ करने तथा विश्वेदेवोंको सोमरस-पान करानेका सविधि विस्तृत वृत्तान्त निरूपित है। यही आख्यान महाभारत शल्यपर्व अ० ३६ में विस्तारसे प्राप्त होता है, जिसका संक्षेपमें भाव इस

प्रकार है।

युगादिमें महर्षि गौतमके एकत, द्वित तथा त्रित नामके तीन पुत्र थे। तीनों ही विद्वान् याजक थे। त्रितके मनमें यजनके द्वारा महान् धन एवं पशुओंका संग्रह कर विश्वेदेवोंका यजन तथा उनके साथ सोमपानकी तीव्र लालसा रहती थी। एक बार जब वे तीनों भाई कहींसे महान् यज्ञ कराकर अपार सम्पत्ति एवं पशुओंके साथ वापस लौट रहे थे, तो रास्तेमें रात हो गयी। त्रित आगे-आगे चल रहे थे। सहसा एक भेड़ियेके नादसे घबड़ाकर वे एक कुएँमें गिर पड़े। कुएँमेंसे उन्होंने अपने दोनों भाइयोंको सहायताके लिये जोरसे पुकारा, किंतु पशु एवं धनके लोभमें पहलेसे ही पड़े हुए एकत एवं द्वितने उस पुकारपर कोई ध्यान नहीं दिया और उन्हें वहीं कुएँमें छोड़कर घरकी ओर प्रस्थित हो गये।

कुएँमें पड़े हुए त्रित एक बार मृत्युसे भयभीत अवश्य हुए, किंतु उन्हें तुरंत प्रत्युत्पन्नमति उत्पन्न हुई और उन्होंने उसी कुएँमें लटकती हुई एक लतामें सोमलताकी कल्पना कर उसके रससे सभी देवताओंको ऋक्-मन्त्रोंद्वारा आहूतकर आप्यायित करनेका उपक्रम किया। वे महान् याजक तो थे ही, उनके सांकल्पिक मानसिक यजन-प्रक्रियासे घबड़ाकर सभी विश्वेदेवगण उस कूपमें उपस्थित हो गये और उनके भावनात्मक यज्ञसे प्रसन्न होकर वर माँगनेके लिये कहा। तब महर्षि त्रितने 'अपनेको उस कूपसे बाहर करने तथा उस कूपके जलके पान करनेवालेको अनायास स्वर्ग सुलभ होनेका' वर माँगा। देवताओंके 'तथास्तु' कहते ही सरस्वती नदी उस कूपमें प्रकट हो गयीं और अपने उत्ताल-तरङ्गोंसे उन्हें ऊपर उठाती हुई कुएँसे बाहर निकाल लिया और तब विश्वेदेवोंने उन्हें अन्य अभिलषित वर प्रदान किये[१]।

नाभानेदिष्टपर विश्वेदेवोंकी कृपा[२]

वैवस्वतमनुके पुत्र नाभानेदिष्ट जो सबसे कनिष्ठ थे, दीर्घकालतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गुरुकुलमें ही रह गये। गुरुकुलसे लौटनेपर जब उन्होंने अपने भाइयोंसे अपने पैतृक दायकी जिज्ञासा की तो उन्होंने उत्तर दिया कि मानव-धर्मशास्त्रके अनुसार हमने ज्येष्ठ आदि क्रमसे अपना-अपना भाग लिया है, तुम्हारे भागके पिताजी ही शेष रह गये हैं। इसपर जब उन्होंने अपने पिताजीसे भाइयोंकी बात बतलायी तो उन्होंने कहा कि तुम उनकी बात न सुनो, किंतु धनकी चिन्ता भी मत करो। यहाँसे थोड़ी दूरपर आङ्गिरस मुनिजन स्वर्ग-प्राप्तिके लिये एक सत्रका अनुष्ठान कर रहे हैं, परंतु छठे दिन वे वैश्वदेव-सत्रमें मोहित हो जाते हैं और बड़ा कष्ट पा रहे हैं। तुम वहाँ जाकर दो वैश्वदेव-सूक्तोंका पाठ कर उनकी सहायता करो, इससे वे तुम्हें दस सहस्र गौएँ तथा उतनी ही सुवर्ण राशि भी देंगे। इसपर प्रसन्न हो नाभानेदिष्टने वैसा ही किया। आङ्गिरस महर्षियोंने स्वर्ग जाते समय नाभानेदिष्टको दस सहस्र गौएँ और उतनी ही सुवर्ण-मुद्राएँ भी दीं। जब नाभानेदिष्ट उन्हें ले चलनेको तैयार हुए तो उसी समय उत्तरकी ओरसे कृष्णवर्णका एक अद्भुत पुरुष वहाँ आकर कहने लगा कि यह सब सम्पत्ति तो मेरी है। तुम इन्हें नहीं ले जा सकते। इसपर नाभानेदिष्टने कहा कि वैश्वदेवसूक्तके शुद्ध पाठके फलस्वरूप स्वर्ग जाते समय आङ्गिरसोंने यह सम्पत्ति मुझे दी है। तब उस कृष्णवर्ण पुरुषने कहा—इस विवादका निर्णय तुम अपने पितासे ही कराओ, इसपर नाभानेदिष्टने जब अपने पितासे जाकर यह सारा वृत्तान्त सुनाया तो उन्होंने कहा कि यज्ञका अवशेष भाग तो रुद्रका ही होता है। तुम उनसे जाकर क्षमा माँगो। नाभानेदिष्ट लौटकर यज्ञभूमिमें उस कृष्णवर्णके पुरुषके पास आये और उन्हें सादर प्रणाम कर निवेदन करने लगे—'हे देव! आप मुझे क्षमा करें। यह सब सम्पत्ति आपकी ही है।' इसपर भगवान् रुद्रने कहा—'आपके पिताने यथार्थ निर्णय किया है और आपने भी

१-प्रभासक्षेत्रमें स्थित इस सारस्वत उदपानतीर्थकी महिमा महाभारतके अतिरिक्त भागवत ३। १। २२ तथा मत्स्यपुराण १४५। १०१ आदिमें भी वर्णित है।

२-ऋग्वेदके दशम मण्डलके ६१वें एवं ६२ वें विश्वेदेव-सूक्तका सम्बन्ध आङ्गिरसोंके यज्ञसे है। इसकी विस्तृत उपोद्घातात्मक व्याख्या ऐतरेय ब्राह्मण (२२। ९-१०) में प्राप्त होती है, उसका उपबृंहण श्रीमद्भागवत (९। ५), विष्णु आदि पुराणों तथा महाभारत (आदि० ७५। १७) आदिमें यथावत् हुआ है। आचार्य सायणने मूलसंहिता एवं ब्राह्मणपर भी भाष्य करते हुए इस कथाको अत्यन्त विस्तारसे लिखा है। पुराणोंमें नाभानेदिष्टकी जगह प्रायः नभगका पुत्र नाभाग नाम प्राप्त होता है, किंतु कथा एक ही समान है, कोई अन्तर नहीं है।

लोभका परित्यागकर यथार्थ कथनपूर्वक जो सम्पत्ति मुझे समर्पित कर दी है, इससे मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ। मैं आपको ब्रह्मज्ञान देता हूँ, जिससे परम श्रेय होगा। अब इस सम्पूर्ण सम्पत्तिको भी आप ग्रहण करें।' इतना कहकर भगवान् रुद्र वहाँसे अन्तर्हित हो गये और नाभानेदिष्ट भी गौओं एवं आङ्गिरसोंद्वारा दी गयी स्वर्णराशि लेकर अपने पिताके पास चले आये। इस प्रकार नाभानेदिष्टने वैश्वदेवी ऋचाओंके पाठसे आङ्गिरसोंको स्वर्ग प्रदान कराया और स्वयं भी उनके कृपापात्र बने[1]

मङ्गलदायक एवं सुख-शान्तिदाता विश्वेदेवगण
(कपोत-शान्ति)

घरमें कपोत आदिके प्रविष्ट हो जानेपर वह किसी बहुत बड़े अनिष्ट एवं अमङ्गलकी सूचना देता है। तन्निमित्तक कपोत-शान्ति की जाती है, जिसमें विश्वेदेवोंसे इस आकस्मिक अमङ्गलको दूरकर सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना की जाती है। ऋग्वेद दशम मण्डलके १६५ वें सूक्तमें ५ वैश्वदेवी ऋचाएँ हैं। जिसमें निर्ऋतिपुत्र महर्षि कपोत विश्वेदेवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि 'यह निर्ऋति नामक पाप देवताका दूत कपोत बाधाकी इच्छासे हमारे घरमें प्रवेश कर गया है, उस बाधाको दूर करनेके लिये हम आपकी पूजा करते हैं। आपलोग कपोत-प्रवेशरूप दोषका परिहार करें और हमारे घरमें निवास करनेवाले द्विपद, चतुष्पद एवं स्थावर-सम्पत्तिकी रक्षा करें। यह जो कपोत नामका पक्षी प्रायः अशुभ माना गया है, वह हमारे लिये शुभकर और सुखकर हो। हमलोगोंको कोई बाधा न पहुँचे। आपलोग ऐसा प्रयत्न करें। यह उलूक या घूक नामका पक्षी जो अशोभन रवसे अमङ्गलकी सूचना दे रहा है और अग्नि-रूप कपोत गृहके मध्यमें पैर रख रहा है, हे विश्वेदेव ! आप इन दोनोंकी अमाङ्गल्यशक्तिको समाप्त कर दें और इसके स्वामी यमराजको भी यहाँसे हम प्रणाम करते हैं, वे हमारा कल्याण करें। हमारे घरके सभी अमङ्गल एवं दोष दूर हो जायँ और यह कपोत उड़कर दूर चला जाय।'

इस पूर्वोक्त वैश्वदेव सूक्तकी प्रत्येक ऋचाको १०८ बार पढ़ते हुए, ॐ सहित घृताक्त समिधाकी अग्निमें आहुति दे, फिर **'यत इन्द्र भयामहे०'**[2] इस मन्त्रसे—स्वस्त्ययन-मन्त्रोंसे तथा अघोर-मन्त्रके द्वारा भी तिल और घृतद्वारा एवं फिर व्याहृतियोंद्वारा भी हवन करना चाहिये। तदनन्तर मङ्गल-जप तथा पूर्णाहुति भी करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

अथर्वणपरिशिष्ट, नारदसंहिता, रत्नमाला एवं ज्योतिर्निबन्ध आदि ग्रन्थोंके अनुसार घरमें जंगली कपोतका प्रवेश, मकानके ऊपर या समीपमें गृध्र, उलूकादिका बैठना, प्रवेश करना अथवा शब्द करना दोषयुक्त तथा गृहस्वामीके लिये अनर्थयुक्त बताया गया है[3]। शान्ति-संग्रह, अथर्वणपरिशिष्ट तथा आश्वलायन आदि गृह्य-सूत्रोंमें इसकी शान्ति आवश्यक बतायी गयी है और उसमें जप, हवन आदिका विस्तृत विधान भी बताया गया है। तदनुसार योग्य ऋत्विजोंका वरणकर यज्ञकुण्ड या स्थण्डिलपर स्वस्ति-पुण्याहवाचनपूर्वक भवनके ईशानकोणमें विशिष्ट शान्ति-कुण्डका निर्माण करना चाहिये और उसमें कुशकण्डिका आदि पूर्वाङ्गकर्मोंका सम्पादन कर वैश्वदेव-सूक्तके **'देवाः कपोत०'** (ऋग्वेद १०।१६५।१—५) इन पाँच ऋचाओंद्वारा १०८ बार आवृत्ति करते हुए आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। अन्तमें पूर्णाहुति तथा विश्वेदेवोंकी प्रार्थना आदिके द्वारा शान्तिकर्मकी विधि पूर्ण करनी चाहिये। इससे सम्पूर्ण दोषों तथा अमङ्गलोंकी निवृत्ति हो जाती है।

(समाप्त)

१-ऋग्वेदके दशम मण्डलके दो सूक्तों (१०।६१-६२) से उपर्युक्त मूल कथाके साथ-साथ यज्ञ-विधियोंका संकेत तथा विश्वेदेवताओंको प्रसन्न करनेवाली ऋचाओंका ज्ञान होता है।

२-यत त इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि॥
(ऋ० ८।६१।१३, साम० २७४,।१३२१, अथर्व० १९।१५।१, तै० ब्रा० ३।७।११।४, तै० आ० १०।१।१, तां० ब्रा० १५।४।३)

३-भागवत (२।१९।१३-१४) में युधिष्ठिर कपोतकी वाणी सुनकर भारी अमङ्गलकी आशंका करते हुए कहते हैं कि मृत्यु या निर्ऋति देवताका दूत यह कपोत यहाँ आकर उलूकके साथ अमङ्गल-रव करता हुआ मेरे मनको भयभीत कर रहा है, लगता है यदुवंशियों तथा कुरु-पाण्डववंशियोंका कोई महान् अकल्याण होनेवाला है।

देवयोनियोंका उद्भव एवं स्वरूप-परिचय

[विशेषाङ्क पृ० सं० २८१ से आगे]

(३) यक्ष

यक्षगण धनाध्यक्ष कुबेरके सेवक एवं उनकी निधियोंके रक्षक कहे गये हैं। गन्धर्वोंके समान ही ये भी गानविद्या आदिमें पारङ्गत तथा प्रायः सभी दिव्य शक्तियोंसे सम्पन्न होते हैं। मणिभद्र यक्षोंके अधिनायक हैं। पुराणोंके अनुसार इनकी मुख्य निवासभूमि हिमालयके अन्तर्गत अलकापुरीके पास मणिभूमिके नामसे कही गयी है। वैसे अन्य कुलपर्वतों तथा अन्तरिक्षमें भी ये विचरण किया करते हैं।

पुराणोंके अनुसार इनकी उत्पत्ति महर्षि कश्यपकी खसा नामक पत्नीसे हुई है[1]। मत्स्यपुराण (अ० २८०) के अनुसार भगवान् शङ्करके गणोंमें भी यक्ष हैं। वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, पुराणों तथा मेघदूत, किरातार्जुनीय आदि काव्योंमें यक्षोंकी अनेकों सुन्दर कथाएँ प्राप्त होती हैं। कथासरित्सागर आदि ग्रन्थोंमें मनुष्योंके साथ यक्षोंके वैवाहिक सम्बन्धका भी उल्लेख है। जिस प्रकार देवादिकी आराधना करनेसे सिद्धि-लाभ होता है, उसी प्रकार यक्ष, यक्षी आदि देवयोनियोंकी उपासनासे भी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

(४) राक्षस

अधिकांश पुराणोंके अनुसार समस्त राक्षस पुलस्त्य मुनिकी हविर्भू नामक पत्नीसे उत्पन्न पुत्रोंकी संतानें हैं। विष्णुपुराणके अनुसार वे कश्यप ऋषिकी खसा नामक पत्नीसे उत्पन्न पुत्रोंकी संतानें हैं। वाल्मीकीय रामायणके अनुसार ये जलकी रक्षाके लिये ब्रह्माजीके द्वारा उत्पन्न किये गये थे। 'राक्षस' शब्द **'रक्ष'** धातुमें **'असुन्'** और **'अण्'** प्रत्यय करनेपर बनता है। सामान्यतः 'असुर' शब्दका इतिहास बहुत बड़ा है। वेदमें 'असुर' शब्द अधिक स्थानोंपर देवताका वाचक है। वहाँ असुरोंमें वरुणदेव ही प्रधान माने गये हैं। वेदोंमें निर्दिष्ट है कि असुर मदिरापान नहीं करते थे। अतः उन्हें 'असुरा' कहा जाता था। अमरसिंहके 'अमरनामलिङ्गानुशासन' के अनुसार **'असुरा दैत्यदैतेयाः पूर्वे देवा सुरद्विषः'** इस वचनमें सबकी संगति लग जाती है। किंतु असुरोंको यहाँ विशेषरूपसे दितिका पुत्र कहा गया है। वैसे सामान्यतया 'असुर' शब्दमें दैत्य, दानव, राक्षस सभी आ जाते हैं। इसीलिये इनकी तीन कोटियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। रामचरितमानसमें इन्हें जातुधान (निशाचर) भी कहा गया है। वेदोंसे लेकर इतिहास, पुराणोंतक सभीमें इन्हें प्रदोष एवं रात्रिमें अधिक बलशाली माना गया है—

जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई ॥

(मानस ६।४६।४)

राक्षसोंमें एक कोटि ब्रह्मराक्षसोंकी होती है। वे वेदविद्यादिमें विशेष निष्णात तथा अन्य राक्षसोंके लिये प्रायः गुरु-स्वरूप होते हैं। 'लंकानगरी' में ऐसे अनेक विद्वान् ब्रह्मराक्षस थे, जिनकी वेदध्वनि अशोकवाटिकामें शिंशपा-वृक्षपर बैठे हुए श्रीहनुमान्जीने श्रवण की थी—

'शुश्राव ब्रह्मनिर्घोषं लंकायां ब्रह्मरक्षसाम् ॥'

इन राक्षसोंके विषयमें महाभारतमें कहा गया है कि ये उत्पन्न होते ही तत्काल युवा एवं बलशाली हो जाते हैं। कथासरित्सागरमें ऐसे कई राक्षसोंकी कथाएँ आती हैं, जो साधु-स्वभावके थे। मन्त्रोंके वशीभूत होकर वे जापकोंके परिवार आदिको ढोकर यथास्थान ले जाते थे। महाभारतके अनुसार महाबली भीमसेनका पुत्र घटोत्कच भी जन्म लेनेके तत्काल बाद सम्पूर्ण पाण्डवोंको कुन्तीसहित अपनी पीठपर बैठाकर हिमालय पर्वतपर ले गया था। इतिहास-पुराणोंमें देवयोनियोंमें देवता एवं राक्षस विशेष प्रसिद्ध हैं। सम्पूर्ण रामायणोंमें इनको रामका शत्रु दिखाया गया है। वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें इनकी उत्पत्ति एवं इनसे सम्बन्धित अनेकों घटनाओंका विस्तृत उल्लेख हुआ है। दानव, दैत्य, प्रेत-पिशाच आदि इनके सहायक होते हैं। देवताओंका विरोध इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

१-अग्निपुराणमें यक्षोंको प्रचेताकी संतान भी कहा गया है—

प्रचेतसः सुता यक्षास्तेषां नामानि मे शृणु। केवलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा ॥
मेघमाली च यक्षाणां गण एष उदाहृतः ॥

(५) गन्धर्व

गन्धर्व देवताओंकी एक योनिविशेषका नाम है। दक्षसुता प्राधाने प्रजापति कश्यपके द्वारा दस देवगन्धर्वोंको उत्पन्न किया था। उनके नाम हैं—सिद्ध, पूर्ण, बर्हि, पूर्णायु, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुपर्ण, विश्वावसु, भानु और सुचन्द्र (महा०, आदि० ६५।४६—४८)। गन्धर्वोंमें हाहा, हूहू और तुम्बुरु बहुत प्रसिद्ध हुए हैं, ये भी प्राधाके ही पुत्र हैं (महा०, आदि० ६५।५२)। कश्यपकी एक अन्य पत्नी अरिष्टासे भी कुछ गन्धर्व उत्पन्न हुए हैं (मत्स्यपु० ६।४५)।

वाल्मीकीय रामायण एवं विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें गन्धर्वराज शैलूषकी तीन करोड़ संतानोंका उल्लेख है। शास्त्रों तथा इतिहास-पुराणोंमें इनसे सम्बन्धित अनेकों कथाएँ प्राप्त होती हैं।

(६) किन्नर

इन्हें 'किम्पुरुष' भी कहते हैं। इनका मुख अश्व-जैसा एवं अन्य शरीर मनुष्यके समान होता है। इनका निवासस्थान मुख्यतः किम्पुरुषवर्ष बतलाया गया है। यह हिरण्मयवर्षके दक्षिण एवं भद्राश्ववर्षके पश्चिम है। ये लोग पुलह ऋषिके वंशज माने गये हैं। संगीतमें इनकी विशेष निपुणता बतलायी गयी है। ये लोग प्रायः देवोपासनामें अनुरक्त रहते हैं। भागवत आदि पुराणोंमें कहा गया है कि हनुमान्‌जी भगवान् श्रीरामके निजधाम-गमनके उपरान्त किम्पुरुषवर्षमें इन किम्पुरुषोंके बीचमें रहकर इन्हें श्रीरामकी कथा सुनाते हैं और इनसे भी रामकथाका श्रवण करते हैं (श्रीमद्भागवत ५।१९)। महाकवि कालिदासके 'कुमारसम्भव' तथा श्रीहर्षके 'नैषधीयचरितम्' एवं भारविके 'किरातार्जुनीयम्' में रैवतक (गिरनार) एवं इन्द्रकील पर्वतोंपर जाने आदिके समय किम्पुरुषोंके विचित्र चरित्रोंके विषयमें उन-उन कवियोंद्वारा अलग-अलग उनके विविध जीवन-चर्याओंकी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गयी है। कथासरित्सागरमें इन किम्पुरुषोंको पर्याप्त उदार बताया गया है एवं इनसे सम्बन्धित कई कथाएँ प्राप्त होती हैं।

(७) पिशाच

ब्रह्माण्ड तथा वायुपुराण आदिके अनुसार पिशाच हीन देवयोनियोंके अन्तर्गत आते हैं। विद्याधर एवं गन्धर्वोंके समान ये रूपवान् नहीं होते, परंतु ये भी कामरूप होते हैं। इनमें इच्छानुसार रूप-परिवर्तनकी शक्ति होती हैं। अन्य दिव्य देवशक्तियाँ भी इन्हें प्राप्त होती हैं।

(८) गुह्यक

इतिहास-पुराणों एवं अनेक कोशों तथा लक्षण-ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह ज्ञात होता है कि गुह्यक नामक देवयोनि भी यक्षोंकी ही एक अवान्तर श्रेणी है। इनके भी स्वामी कुबेर ही हैं। धनाध्यक्ष कुबेरको गुह्यकेश्वर, गुह्यकपति भी कहा गया है। गुह्यकगण प्रायः कुबेरकी पालकीको अपने कन्धोंपर वहन करते हैं। कुबेरके अनुचर होनेसे इनका निवासस्थान भी अलकापुरीके आस-पास हिमालयका क्षेत्र माना जाता है। कथासरित्सागर एवं बृहत्कथामञ्जरीमें प्रायः बीस गुह्यकोंकी कथाएँ आयी हैं। उससे ज्ञात होता है कि इनके पास कोई ऐसा दिव्य पात्र होता था, जिससे भोजन आदि सम्पूर्ण सामग्रियाँ अपने-आप निकलती रहती थीं। अमरकोशमें **'पिशाचो गुह्यको सिद्धो०'** कहकर इन्हें सामान्य देवयोनिमें परिगणित किया गया है। महाभारतमें द्रौपदीकी स्वयंवर-सभामें इनके उपस्थित रहने एवं पाण्डवोंके हिमालय-वासमें इनसे मिलनेकी बात आती है। ये प्रायः छिपकर रहते हैं, इसीसे इन्हें 'गुह्यक' कहते हैं।

(९) सिद्ध

सिद्धोंके अनेक भेद हैं। योगसाधना, मन्त्र-साधना, तपःसिद्ध और मणि, ओषधि आदिके प्रभावसे बने हुए सिद्ध कर्मसिद्ध कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त विद्याधर, गन्धर्व, किन्नरकी तरह इनसे एक भिन्न देवयोनि भी 'सिद्ध' नामसे प्रसिद्ध है। ये जन्मजात सिद्ध होते हैं। यहाँ विशेषकर इन्हीं सिद्धोंसे तात्पर्य है। सिद्धगण सब प्रकारके स्थूल एवं सूक्ष्म जगत्‌की सिद्धियोंसे युक्त तथा धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य आदि श्रेष्ठ गुणोंसे पूर्णतया सम्पन्न होते हैं। इनमें कपिल आदि सिद्ध तपःसिद्ध हैं। ये अलौकिक शक्तिसम्पन्न, अत्यन्त पवित्र, पुण्यात्मा तथा अन्तर्दृष्टियुक्त होते हैं। ये प्रायः सिद्धलोकमें अदृश्य ही रहते हैं। किंतु आवश्यकतानुसार स्थूल शरीर भी धारण कर लेते हैं।

महाभारतके अश्वमेधपर्वमें वर्णन आया है कि दिव्य दृष्टि-सम्पन्न सिद्ध पुरुष अपने दिव्य चक्षुओंसे जीवोंका शरीर

त्यागना, पुनः शरीर धारण करना आदि भलीभाँति देख तथा जान सकते हैं। इच्छानुसार सिद्ध पुरुष आत्मशक्तिसम्पन्न सात्त्विक साधकोंको दर्शन एवं ज्ञान प्रदान करते हैं। वस्तुतः देवताओंसे जो सम्बद्ध सिद्धयोनि है, उसके अन्तर्गत आनेवाले सिद्धगण प्रायः विद्याधरोंके तुल्य एवं उन्हींकी भाँति आचरण करनेवाले होते हैं। यह वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्डके प्रारम्भिक श्लोकोंसे सुस्पष्ट है। सिद्धोंका निवास-स्थान स्वर्गलोक, हिमालय, कैलास, इन्द्रकील तथा रैवतक आदि दिव्य-पर्वत एवं उत्तराखण्डकी पवित्र भूमि है। शास्त्रों एवं इतिहास-पुराणोंमें इनकी अनेक स्थानोंपर चर्चा हुई है एवं तत्सम्बन्धी आख्यानोपाख्यान भी प्राप्त होते हैं।

(१०) भूत-प्रेत

भूत और प्रेत एक साथ द्वन्द्व समासके रूपमें सहचर शब्द माने गये हैं। ये दोनों ही शब्द मृत व्यक्तियोंके लिये प्रयुक्त होते हैं। गरुडपुराणका प्रेतकल्प एवं कर्मकाण्डकी प्रेत-संस्कार-पद्धतियाँ और वैशाख-माहात्म्य, माघ-माहात्म्य आदिमें प्रेतोंके निवास-स्थान, कर्म आदिका विस्तारसे विवेचन हुआ है। 'अमरकोश' में यमराजका 'प्रेतपति' नाम आया है। मङ्गलपाठमें भी **'चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणो प्रेताधिपान्ये ग्रहाः'** इस पंक्तिमें चन्द्र, सूर्यके साथ-साथ वित्तपालसे कुबेर और वरुणसे पश्चिम दिशाके दिक्पाल प्रचेता वरुण तथा प्रेताधिपसे यमराज ही अभीष्ट हैं। इस प्रकार सभी शास्त्रों एवं लक्षण-कोशोंके साक्ष्यसे देवयोनि होनेपर भी ये भूत-प्रेत कष्टापन्न देवयोनियोंमें ही परिगणनीय हैं। इनका स्वरूप अत्यन्त विकराल एवं अवस्था चिन्तनीय होती है। अस्थि-पञ्जररूप, स्नायुबद्ध इन देवयोनियोंका कल्याण श्राद्ध आदिद्वारा ही सम्भव है।

(११) नाग

नागोंकी गणना भी देवकोटिमें की जाती है। इनकी उत्पत्ति कद्रूदेवीसे हुई थी। महर्षि कश्यप इनके पिता कहे गये हैं। पातालमें स्थित भोगवती नगरी नागोंका मुख्य निवास-स्थान है।

(१२) चारण

श्रीमद्भागवत (७।८।५१) के अनुसार चारण नामक इस देवयोनिके नामकी सार्थकता भगवान्के चरणकमलोंकी शरण-ग्रहण करनेके कारण है। 'चारण' की उत्पत्ति 'चरण' शब्दसे हुई है। जिस प्रकार लौकिक चारण, बन्दी एवं भाटजनोंकी श्रेणीमें प्रतिष्ठा प्राप्तकर राजाओं, महाराजाओंका गुणगान करते हैं, उसी प्रकार चारण देवयोनि भी शिव, विष्णु, इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवोंका निरन्तर गुणगान करती रहती है। वाल्मीकीय रामायण एवं भागवत आदिमें इनकी अत्यन्त प्रतिष्ठा हुई है। इतिहास-पुराणोंमें चारणोंकी अनेक कथाएँ अन्य देवयोनियोंके साथ ही मिलती हैं। भगवान्के चरितगानमें ये किम्पुरुषोंके तुल्य ही हैं।

वेदों एवं पुराणोंमें देवयोनियोंके अन्य अनेक उपभेद भी निर्दिष्ट हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रमथ, रुद्रगण तथा अन्य देवताओंके परिकरोंमें बहुतसे उपदेवताओंका निर्देश मिलता है। यहाँ तो कुछ मुख्य एवं विशेष विख्यात देवयोनियोंका ही परिचय दिया गया है।

वारोंके अधिष्ठातृ-देवता

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
देवता	शिव	दुर्गा	षण्मुख	विष्णु	ब्रह्मा	इन्द्र	यम

(श्रीतत्त्वनिधिमें शैवागमके वचन)

कृषि एवं क्षेत्रके अधिष्ठाता भगवान् क्षेत्रपाल

[विशेषाङ्क पृ० सं० ३२७ से आगे]

क्षेत्रपालके भेद

मुख्य देवता एक होनेपर भी शिवके एकादश रुद्रों, सूर्यके द्वादश आदित्यों तथा वायुके उनचास मरुद्भेदोंके समान ही इनके भी ४९ भेद शास्त्रोंमें निरूपित हैं। प्रयोगसार आदि कई ग्रन्थोंमें कामनाभेदसे इनके ४९ नाम भी दिये गये हैं, यथा—१-अजर, २-आपकुम्भ, ३-इन्द्रसूनु, ४-ईडाचार, ५-उल्कामुख, ६-ऊष्माद, ७-ऋषिसूदन, ८-ॠमुक्त, ९-लृप्तकेश, १०-लॄपक, ११-एकदंष्ट्रक, १२-ऐरावत, १३-ओघवन्धु, १४-औषधघ्न, १५-अञ्जन, १६-अस्त्रबाहु, १७-कवल, १८-खरुखानल, १९-गोमुख, २०-घण्टाद, २१-अङणार, २२-चण्डचारण, २३-छटाटोप, २४-जटाल, २५-झङ्कार, २६-ञठश्वर, २७-टङ्कपाणि, २८-ठाणबन्धु, २९-डामर, ३०-ढक्कारव, ३१-णकर्ण, ३२-तडिद्देह, ३३-स्थिर, ३४-दन्तुर, ३५-धनद, ३६-नतिक्रान्त, ३७-प्रचण्डक, ३८-फट्कार, ३९-बीरसन्ध, ४०-भृङ्ग, ४१-मेघमासुर, ४२-युगान्त, ४३-रौरव, ४४-लम्बोष्ठ, ४५-वसव, ४६-शुकनन्द, ४७-षडाल, ४८-सुनामा और ४९-हंधक (हंग्रुक)।

वैसे क्षेत्रपाल देवताके और भी कई नाम हैं, किंतु मातृका-वर्णोंपर आधारित होनेसे ये विशेष महत्त्वके हैं। कोई भी देवता ४९ वर्णाक्षरोंमेंसे जिस वर्णके मन्त्रसे सम्बद्ध है, वहाँ इन ४९ वर्णोंमेंसे उस वर्णका स्वामी क्षेत्रपाल उस देवतासे विशिष्ट सम्बन्धित माना जाता है। अतः तत्तदक्षरोंसे सम्बद्ध मन्त्रात्मक देवताके तत्तत् क्षेत्रपाल देवता भी होते हैं, इसलिये विशेष रूपसे इनकी पूजा की जानी चाहिये, बिना क्षेत्रपालकी पूजा किये किया हुआ कर्म सफल नहीं होता, क्योंकि ये क्षेत्रपाल देवता उसे नष्ट कर देते हैं।

वैदिक कर्मकाण्ड-ग्रन्थोंमें पूर्वोक्त ४९ क्षेत्रपालोंके स्थानपर किञ्चित् भिन्न नामसे पृथक्-पृथक् वैदिक मन्त्रोंद्वारा उनकी पूजा-परम्पराका उल्लेख मिलता है। इनकी पूजामें न केवल वैदिक मन्त्र अपितु तान्त्रिक तथा पौराणिक मन्त्र भी उपलब्ध होते हैं। ये ४९ नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१-अजर, २-व्यापक, ३-इन्द्रचौर, ४-इन्द्रमूर्ति, ५-उक्षन् या उक्षाभिद्, ६-कूष्माण्ड, ७-वरुण, ८-बाहुक, ९-विमुक्त, १०-लिप्तक, ११-लीलालोक, १२-एकदंष्ट्र, १३-ऐरावत, १४-औषधघ्न, १५-बन्धन, १६-दिव्यकाय, १७-कम्बल, १८-क्षोभण, १९-गवि, २०-घण्टाभिध, २१-व्यालाय, २२-अणुस्वरूप, २३-चन्द्रवारुण, २४-फटाटोप, २५-जटाल, २६-क्रतु, २७-घण्टेश्वर, २८-विटङ्क, २९-मणिमति, ३०-गणबन्ध, ३१-डामर, ३२-दुण्ढिकर्ण, ३३-स्थविर, ३४-दन्तुर, ३५-धनद, ३६-नागकर्ण, ३७-मारीगण, ३८-फेत्कार, ३९-चीकर, ४०-सिंहाकृति, ४१-मृग, ४२-यक्ष्मप्रिय, ४३-मेघवाहन, ४४-तीक्ष्णोष्ट्र, ४५-अनल, ४६-शुक्लतुण्ड, ४७-अन्तरिक्ष, ४८-बर्बरक तथा ४९-पावन।

क्षेत्रपाल-पूजन

भगवान् क्षेत्रपालका पूजन सभी यज्ञभूमियों, देवमन्दिरोंके निर्माण, नगर-ग्रामकी स्थापना, पुष्पवाटिका, वृक्षोद्यान, सरोवर-निर्माण आदि सभी इष्टापूर्त-कर्मों तथा प्रतिष्ठाकर्मोंमें आवश्यक माना गया है। इसके साथ ही वृष्टि, कृषि-कर्म तथा उसके रक्षा-पालनके भी ये अधिष्ठाता देवता हैं। वैदिक संहिताओंमें यह बात आयी है कि इन्हींके बलसे राजा स्वराष्ट्ररक्षणपूर्वक विजय प्राप्त करता था।

प्रतिष्ठा-ग्रन्थोंमें इनके मण्डल-निर्माणसे लेकर पञ्चोपचार या षोडशोपचार-पूजन, हवन, बलि (दधि-माष-भक्त-बलि) आदि कर्मोंका विस्तृत विधान प्राप्त होता है। नवकोष्ठात्मक वेदिकाके मध्यमें पावन नामके क्षेत्रपाल तथा अन्य ८ कोष्ठकोंमें क्रमशः छः-छः क्षेत्रपाल देवताओंका आवाहन-स्थापनपूर्वक पूजन करनेका विधान है। इसके बाद ही कमलाकार पीठकी रचनाकर उसके आठ पत्रोंमें क्रमशः अनल, अग्निकेश, कराल, घण्टारव, महाक्रोध, पिशिताश, पिङ्गलाक्ष तथा ऊर्ध्वकेश—इन नामोंसे पूजा की जाती है। प्रधान मूर्तिकी प्रतिमाकी विशेष पूजा कर उनके पार्श्वमें स्थित लोकपालों तथा उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी भी पूजा करनेका विधान है।

क्षेत्रपाल-चक्र
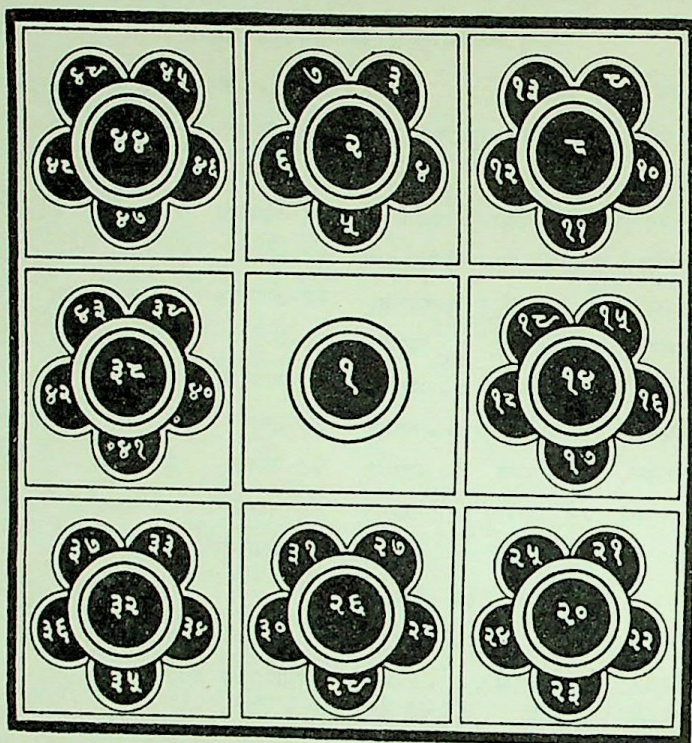
पूजनके अन्तमें इनकी विशेष प्रसन्नताके लिये सदीप दधि-माष-भक्त-बलिका विधान है। बलिका मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ क्षेत्रपालाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमां बलिं निर्हरामि। भो क्षेत्रपाल ! क्षेत्रं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे आयुःकर्ता शुभकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव।

साधकको व्यञ्जनसहित एक बड़ा-सा पिण्ड बनाकर क्षेत्रेशका ध्यान करते हुए उनके हाथमें बलि देनी चाहिये, इस प्रयोगसे वे संतुष्ट होकर कान्ति, मेधा, बल, आरोग्य, पुष्टि, यश, श्री, धन-धान्य तथा ऐश्वर्य आदि प्रदान करते हैं—

बलिनानेन संतुष्टः क्षेत्रपालः प्रयच्छति।
कान्तिं मेधां बलारोग्यतेजःपुष्टियशःश्रियः॥

(शारदातिलक २०।४३)

यह सर्वतोभद्रादि चक्रोंके समान ही क्षेत्रपालचक्र भी बड़ा भव्य एवं आकर्षक होता है। एक वेदीपर ९ समान कोष्ठक बनाये जाते हैं, जिनमें सबसे मध्यमें 'अजर' नामक प्रधान क्षेत्रपतिका अकेला कोष्ठक होता है, उसके ठीक पूर्वमें द्वितीय क्षेत्रपालसे लेकर सप्तम क्षेत्रपालतक प्रदक्षिण-क्रमसे स्थापना की जाती है, पुनः अग्निकोणपर ६ कोष्ठकोंका तृतीय कोष्ठक होता है, जिसमें प्रदक्षिण-क्रमसे ८ से लेकर १३वीं संख्यातकके क्षेत्रपालोंका स्थान होता है। इसी प्रकार दक्षिण दिशाके कोष्ठकमें १४से लेकर १९ तक, नैर्ऋत्यकोणके कोष्ठकमें २०से लेकर २५ तक, पश्चिममें २६ से ३१ तक, वायुकोणमें ३२से ३७ तक, उत्तर दिशामें ३८से ४३ तक तथा ईशानकोणमें स्थित अन्तिम चक्रके कोष्ठकमें ४४ से लेकर ४९ तक क्षेत्रपालोंका आवाहन, प्रतिष्ठा तथा पूजन आदिका विधान निर्दिष्ट है।

श्रीराधाकृष्णकी युगलोपासना

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[विशेषाङ्क पृ० सं० ६४ से आगे]

यहाँ श्रीराधामाधव-युगलकी पूजाकी संक्षिप्त विधि लिखी जाती है। मानस या श्रीविग्रहकी स्थापना कर साधक पूजा कर सकते हैं।

श्रीवृन्दावनमें यमुनाके तीरपर अनेक प्रकारके वृक्ष-लताओंका एक बृहत् वनकुञ्ज है। भाँति-भाँतिके पुष्प खिले हुए हैं और उनपर मधुपान-मत्त भ्रमरोंके समुदाय गुंजार कर रहे हैं। यमुनाजीमें वायुके झोकोंसे सुन्दर मन्द-मन्द तरंगें नाच रही हैं। भाँति-भाँतिके कमल खिल रहे हैं। वहीं श्रीराधामाधव एक कदम्ब-वृक्षके नीचे विराजित हैं। श्रीकृष्णके वामपार्श्वमें श्रीराधिकाजी हैं। इस प्रकार ध्यान करके वृन्दावनकी कल्पना करे। तदनन्तर निम्नलिखित रूपमें श्रीराधामाधवका स्मरण तथा ध्यान करे—

गोविन्दका ध्यान

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं वर्हावतंसप्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंगावृतं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे॥

'प्रफुल्ल नील कमलके समान जिनकी श्याम मनोहर कान्ति है, मुखमण्डलकी चारुता चन्द्रविम्बको भी विलज्जित करती है, मोरपंखका मुकुट जिन्हें अधिक प्रिय है, जिनका वक्ष स्वर्णमयी श्रीवत्सरेखासे समलंकृत है, जो अत्यन्त तेजस्विनी कौस्तुभमणि धारण करते हैं और रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं, गोपसुन्दरियोंके नयनारविन्द जिनके श्रीअङ्गोंकी सतत अर्चना करते हैं, गौओं तथा गोपकिशोरोंके संघ जिन्हें घेरकर खड़े हैं तथा जो दिव्य अङ्गभूषासे विभूषित हो मधुरातिमधुर वेणुवादनमें संलग्न हैं, उन परम सुन्दर गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।'

श्रीराधाका ध्यान

हेमाभां द्विभुजं वराभयकरां नीलाम्बरेणादृतां
श्यामक्रोडविलासिनीं भगवतीं सिन्दूरपुञ्जोज्ज्वलाम्।
लीलाक्षीं नवयौवनां स्मितमुखीं विम्बाधरां राधिकां
नित्यानन्दमयीं विलासनिलयां दिव्याङ्गभूषां भजे॥

'जिनके गोरे-गोरे अङ्गोंकी हेममयी आभा है, जो दो भुजाओंसे युक्त हैं और दोनों हाथोंमें क्रमशः वर एवं अभयकी मुद्रा धारण करती हैं, नीले रंगकी रेशमी साड़ी जिनके श्रीअङ्गोंका आवरण बनी हुई है, जो श्यामसुन्दरके अङ्कमें विलास करती हैं, सीमन्तगत सिन्दूरपुञ्जसे जिनकी सौन्दर्य-श्री और भी उद्भासित हो उठी है, चपल नयन, नित्य नूतन यौवन, मुखपर मन्दहासकी छटा तथा विम्बफलकी अरुणिमाको भी तिरस्कृत करनेवाला अधर-राग जिनका अनन्य-असाधारण वैशिष्ट्य है, जो नित्य आनन्दमयी तथा विलासकी आवासभूमि है, जिनके अङ्गोंके आभूषण दिव्य (अलौकिक) हैं, उन भगवती श्रीराधिकाका मैं चिन्तन करता हूँ।'

तत्पश्चात् मन-ही-मन श्रीराधामाधवका आवाहन करके निम्नलिखित श्लोकोंसे श्रीराधा-माधवको प्रणाम करे—

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते।
गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त नमोऽस्तु ते॥
तप्तकाञ्चनगौराङ्गि राधे वृन्दावनेश्वरि।
वृषभानुसुते देवि त्वां नमामि हरिप्रिये॥

तदनन्तर श्रीराधामाधवके चरणोंका विशुद्ध प्रेम प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पूजनका संकल्प करे और पूजा आरम्भ कर दे—

आसन—

'इदमासनं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः
श्रीकृष्ण! प्रभो! इदमासनं सुखमास्यताम्।'
'इदमासनं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः
श्रीराधे! भगवति! इदमासनं सुखमास्यताम्॥'

इस मन्त्रके द्वारा सुमनोहर आसन प्रदान करे। अभावमें पुष्प अर्पण करे। स्वागत—निम्नलिखित वाक्यके द्वारा सादर अभ्यर्थना करके कुशलप्रश्न करे—

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः सर्वार्थसिद्धये।
तस्य ते परमेशान सुस्वागतमिदं वपुः॥
भो भगवन् श्रीकृष्ण स्वागतं सुस्वागतम्।
हे श्रीकृष्ण प्रभो स्वागतं करोमि॥
यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः सर्वार्थसिद्धये।
तस्य ते राधिके देवि सुस्वागतमिदं वपुः॥
भो भगवति श्रीराधिके स्वागतं सुस्वागतम्।
हे राधिके परमेश्वरि स्वागतं करोमि॥

पाद्य—किसी चाँदी, ताम्र या पीतलके पात्रमें चन्दन-सहित पुष्प और तुलसीदल डालकर जल भर ले और—**'एतत् पाद्यं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** कहकर श्रीकृष्णके चरणोंमें जल अर्पण करे। इसी प्रकार—**'एतत् पाद्यं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'**—बोलकर श्रीराधाके चरणोंमें जल अर्पण करे।

अर्घ्य—शङ्खमें जल लेकर—**'इदमर्घ्यं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** बोलकर श्रीकृष्णके मस्तकपर अर्घ्यजल प्रदान करे। **'इदमर्घ्यं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** बोलकर श्रीराधाके मस्तकपर अर्घ्यजल अर्पण करे।

आचमनीय—दूसरे पात्रमें जल लेकर—**'इदमाचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** बोलकर श्रीकृष्णके हाथोंमें आचमनीय-जल अर्पण करे। **'इदमाचमनीयं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** कहकर श्रीराधाके हाथोंमें आचमनीय-जल अर्पण करे।

मधुपर्क—काँसे अथवा चाँदीके पात्रमें (ताँबेका पात्र न हो) मधुपर्क (मधु, घृत, शर्करा, दधि और जल— अभावमें पुष्प, तुलसी और जल) लेकर **'इदं मधुपर्कं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः'**—कहकर मधुपर्क-सामग्रीको श्रीकृष्णके मुखमें अर्पण करे। **'इदं मधुपर्कं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** कहकर मधुपर्क-सामग्रीको श्रीराधाके मुखमें अर्पण करे।

पुनराचमनीय—एक पात्रमें जल लेकर—**'इदं पुनराचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** बोलकर श्रीकृष्णके मुखमें अर्पण करे। इसी प्रकार **'इदं पुनराचमनीयं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** बोलकर श्रीराधाके मुखमें अर्पण करे।

स्नान—किसी शुद्ध ताम्रपात्र या शङ्खमें कर्पूर, चन्दन, सुवासित शुद्ध जल लेकर—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

—यह मन्त्र बोलकर जलपर अङ्कुशमुद्रा दिखाकर तीर्थोंका आवाहन करे। तदनन्दतर—

वृन्दावनविहारेण श्रान्तिं विश्रान्तिकारकम्।
चन्द्रपुष्करपानीयं गृहाण पुरुषोत्तम॥

—बोलकर श्रीकृष्णको स्नान करावे। इसी प्रकार श्रीराधाको स्नान करावे।

वस्त्र—**'इदं परिधेयवस्त्रम् इदमुत्तरीयवासश्च श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** यह मन्त्र बोलकर बहुत बढ़िया महीन पीला वस्त्र तथा उत्तरीय वस्त्र भगवान्‌को पहना दे। इसी प्रकार—**'इदं परिधेयवस्त्रं कञ्चुकीम् उत्तरीयवासश्च श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** यह मन्त्र बोलकर बढ़िया नीले रंगकी साड़ी, कञ्चुकी और किनारीदार ओढ़नी श्रीराधिकाजीको अर्पण करे।

भूषण—**'इमानि भूषणानि श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** बोलकर रत्न-स्वर्ण आदिनिर्मित अलंकार (हार, मुकुटमणि, कड़े आदि गहने) भगवान्‌को पहना दे।

इसी प्रकार—**'इमानि भूषणानि श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** बोलकर राजरानियोंके पहननेयोग्य रत्न-स्वर्णादिके गहने श्रीराधाको अर्पण करे।

गन्ध—केसर-कर्पूर-मिश्रित चन्दन लेकर—**'इमं गन्धं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** कहकर चन्दनको श्रीकृष्णके श्रीअङ्गोंपर लेपन करे या उन्हें अर्पण करे। **'इमं गन्धं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** कहकर चन्दनको श्रीराधाके श्रीअङ्गोंपर लेपन करे या उन्हें अर्पण करे।

पुष्प—सुगन्धित नाना प्रकारके पुष्प लेकर—**'इमानि पुष्पाणि श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'** बोलकर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंपर अर्पण करे। **'इमानि पुष्पाणि श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** बोलकर पुष्प श्रीराधाके श्रीचरणोंपर अर्पण करे।

तुलसीदल—इसके अनन्तर चन्दनसहित तुलसीदल लेकर—**'इदं सचन्दनं तुलसीदलं श्रीकृष्णाय निवेदयामि**

नमः ।' कहकर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें आठ बार अर्पण करे।

श्रीराधाजीको तुलसीदल अर्पण नहीं किया जाता।

तदनन्तर श्रीकृष्णके आठ नामोंका उच्चारण करते हुए आठ पुष्पाञ्जलियाँ श्रीकृष्णको अर्पण करे—

श्रीकृष्णाय नमः । श्रीवासुदेवाय नमः । श्रीनारायणाय नमः । श्रीदेवकीनन्दनाय नमः । श्रीयदुश्रेष्ठाय नमः । श्रीवार्ष्णेयाय नमः । श्रीअसुराक्रान्तभूभारहारिणे नमः । श्रीधर्मसंस्थापिने नमः ।

श्रीराधाके आठ नामोंका उच्चारण करते हुए आठ पुष्पाञ्जलियाँ श्रीराधाको अर्पण करे—

श्रीराधिकायै नमः । श्रीरासेश्वर्यै नमः । श्रीकृष्ण-कान्तायै नमः । श्रीनित्यनिकुञ्जेश्वर्यै नमः । श्रीवृषभानुसुतायै नमः । श्रीगान्धर्विकायै नमः । श्रीवृन्दावनमहेश्वर्यै नमः । श्रीकृष्णप्राणाधिकादेव्यै नमः ।

धूप—पीतल या चाँदीकी धूपदानीमें धूप रखकर—**'इमं धूपं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः'**—कहकर श्रीकृष्णको धूप अर्पण करे। **'इमं धूपं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः'**—कहकर श्रीराधाको धूप अर्पण करे।

दीप—गोघृत या शुद्ध तैलके द्वारा जलाये हुए दीपकको, **'इमं दीपं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः'**—बोलकर बायें हाथसे घंटी बजाते हुए एवं दायें हाथमें दीपकको लेकर आरतीकी भाँति घुमाते हुए श्रीकृष्णको अर्पण कर दे। **'इमं दीपं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः'**—कहकर दीपकको श्रीराधाको अर्पण कर दे।

नैवेद्य—पवित्र थाली एवं कटोरोंमें भोज्य पदार्थ सजाकर धुली हुई चौकी या पाटेपर रख दे और पीनेके लिये एक दूसरे पात्रमें सुवासित जल भरकर रख दे। फिर **'अस्त्राय फट्'** मन्त्र बोलकर चक्रमुद्रा दिखलाते हुए नैवेद्यका संरक्षण करे। तदनन्तर किसी शुद्ध पात्रमें स्थापित जलमें **'यं'** वायु-बीजका बारह बार जप करके उस जलके द्वारा नैवेद्यका प्रोक्षण करे और दाहिने हाथमें **'रं'** बीजका स्मरण करते हुए दाहिने हाथकी पीठपर बायाँ हाथ रखकर वह्निबीजका उच्चारण करे। इसके द्वारा नैवेद्यकी शुष्कताका दोष दूर होता है। फिर बायें हाथकी हथेलीपर अमृत-बीज **'ठं'** का स्मरण करके बायें हाथकी पीठपर दायाँ हाथ रखकर नैवेद्यको अमृतधारासे सिक्त करे। पीछे चन्दन और पुष्प लेकर—**'एते गन्धपुष्पे श्रीकृष्णाय नमः ।'** एवं **'एते गन्धपुष्पे श्रीराधिकायै नमः ।'** बोलकर श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाका क्रमशः अर्चन करे। फिर बायें हाथसे नैवेद्यके पात्रका स्पर्श करके दाहिने हाथसे गन्ध, पुष्प और जल लेकर—**'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा ।'**—इस मन्त्रका उच्चारण करके— **'इदं नैवेद्यं श्रीकृष्णाय कल्पयामि ।'** **'इदं नैवेद्यं श्रीराधिकायै कल्पयामि ।'**—बोलकर जलको भूमिपर छोड़ दे। तदनन्तर प्रत्येक नैवेद्यके पात्रमें तुलसीदल रखे। फिर दोनों हाथोंद्वारा नैवेद्यपात्रको उठाकर भक्ति और दैन्यके साथ—**'निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे ।'**—इस मन्त्रका उच्चारण करके दोनोंको नैवेद्य अर्पण करे। पीछे **'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'**—बोलकर श्रीराधामाधवके हाथोंमें जल देकर बायें हाथके द्वारा 'ग्रास-मुद्रा' दिखावे। तदनन्तर **'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा', 'उदानाय स्वाहा', 'समानाय स्वाहा ।'**—इन पाँचों मन्त्रोंका क्रमशः उच्चारण करके प्राणादि पाँच मुद्राएँ दिखावे।

पानीयोदक—फिर तुलसीपत्रसे सम्बन्धित सुवासित निर्मल जलसे भरा पूर्णमात्र—**'एतत् पानीयोदकं श्रीकृष्णाय निवेदयामि ।'** एवं **'एतत् पानीयोदकं श्रीराधिकायै निवेदयामि ।'**—बोलकर श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाको अर्पण करे। तदनन्तर नैवेद्यपर दस बार उपर्युक्त अष्टादशाक्षर मन्त्रका जप करके घंटी बजाये और पर्दा लगाकर घरसे बाहर आ जाय और १०८ बार उसी मन्त्रका जप करे तथा मन-ही-मन यह भावना करे कि श्रीराधामाधव भोजन कर रहे हैं। इसके पश्चात् भोजन-समाप्तिके बाद द्वार खोलकर या पर्दा हटाकर—

आचमन—जलके द्वारा **'इदमाचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि ।'** **'इदमाचमनीयं श्रीराधिकायै निवेदयामि ।'**—कहकर आचमनके लिये जल प्रदान करे।

ताम्बूल-अर्पण—इसी प्रकार— **'एतत् ताम्बूलं श्रीकृष्णाय निवेदयामि ।'** तथा **'एतत् ताम्बूलं श्रीराधिकायै निवेदयामि ।'**— कहकर श्रीकृष्ण-राधाको ताम्बूल अर्पण करे। बादमें माला-चन्दन आदि अर्पण करे।

आरती—आसनपर बैठकर कर्पूर-मिले हुए गोघृतमें

रूईकी बत्तियाँ भिगोकर पाँच दीपककी आरती बनावे और तर्जनी तथा अँगूठेसे उसे पकड़कर दाहिनी ओरसे बायीं ओर और बायीं ओरसे दाहिनी ओर तीन बार या सात बार ले जाये। गात्रमार्जनीय वस्त्र और तुलसीके द्वारा भी इसी प्रकार आरती करे।

पुष्पाञ्जलि—फिर मूल-मन्त्रका स्मरण करते हुए। दीपकपर धेनुमुद्रा दिखाकर श्रीराधामाधवको पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। अन्तमें तीन बार या पाँच बार शङ्खध्वनि करके पूजा समाप्त करे। आरतीके समय इस आरतीका गान करे—

राधामाधव-युगलकी आरती

आरति राधा-राधावर की।
महाभाव रसराज-प्रवरकी ॥
स्याम बरन पीताम्बरधारी।
हेम बरन तन नीली सारी।
सदा परस्पर सुखसंचारी।
नील कमल कर मुरलीधर की।
आरति राधा-राधावर की ॥ १ ॥
चारु चन्द्रिका मन-धन-हारी।
मोर-पिच्छ सुन्दर सिरधारी।
कुंजकुँवरि नित कुंजबिहारी।
अधरनि मृदु मुसकान मधुरकी।
आरति राधा-राधावर की ॥ २ ॥
प्रेम दिनेस कामतम-हारी।
रहित सुखेच्छा निज, अविकारी।
आश्रय-विषय परस्पर-चारी।
पावन परम मधुर रसधर की।
आरति राधा-राधावर की ॥ ३ ॥
निज-जन-नेह अमित विस्तारी।
उर पावन रस-संग्रहकारी।
दिव्य सुखद, दुख-दैन्य-बिदारी।
भक्त-कमल हित हिय सरबर की।
आरति राधा-राधावर की ॥ ४ ॥

आरतीके समय मृदङ्ग, ढोल, झाँझ, करताल आदि बजाने चाहिये। आरती करनेके पश्चात् उपस्थित व्यक्तियोंको आरती दिखावे और आरतीके जलके छींटे उनपर डाले। तत्पश्चात् प्रसाद-वितरण करे। अन्तमें निम्नलिखित श्लोकोंके द्वारा स्तुति करे—

कातर-प्रार्थना

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
आवेदितं निवेदान्तं तद् गृहाणानुकम्पया ॥
त्राहि मां पापिनं घोरं धर्माचारविवर्जितम्।
नमस्कारेण देवेश दुस्तराद्भवसागरात् ॥
दैन्यार्णवे निमग्नोऽस्मि मन्तुग्रावभरार्दितः।
दुष्टे कारुण्यपारीण मयि कृष्ण कृपां कुरु ॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादशुभं यन्मया कृतम्।
क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं दास्येनैव गृहाण माम् ॥
आधारोऽप्यपराधानामविवेकहतोऽप्यहम्।
त्वत्कारुण्यप्रतीक्ष्योऽस्मि प्रसीद मयि माधव ॥
युवतीनां यथा यूनि यूनां च युवती यथा।
मनोऽभिरमते तद्वन्मनो मे रमतां त्वयि ॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

श्रीराधा-माधव-युगलसे कृपाभिक्षा

राधे वृन्दावनाधीशे करुणामृतवाहिनि।
कृपया निजपादाब्जे दास्यं मह्यं प्रदीयताम् ॥
तवास्मि राधिकानाथ कर्मणा मनसा गिरा।
कृष्णकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥
योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च।
तत् सर्वं भवतोरद्य चरणेषु मयार्पितम् ॥
संसारसागरान्नाथौ पुत्रमित्रगृहाकुलात्।
गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ ॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानितराकरौ।
प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि ॥

अपराध-क्षमापन

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

तदनन्तर इच्छा हो तो निम्नलिखित स्तोत्रका पाठ करे—

नवजलधरविद्युद्धौतवर्णौ प्रसन्नौ
वदननयनपद्मौ चारुचन्द्रावतंसौ ।
अलकतिलकभालौ केशवेशप्रफुल्लौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

नववसनहरितनीलौ चन्दनालेपनाङ्गौ
मणिमरकतदीप्तौ स्वर्णमालाप्रयुक्तौ ।
कनकवलयहस्तौ रासनाद्यप्रसक्तौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

अतिमधुरसुवेषौ रङ्गभङ्गीत्रिभङ्गौ
मधुरमृदुलहास्यौ कुण्डलाकीर्णकर्णौ ।
नटवरवररम्यौ नृत्यगीतानुरक्तौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

विविधगुणविदग्धौ वन्दनीयौ सुवेशौ
मणिमयमकराद्यैः शोभिताङ्गौ स्रुवन्तौ ।
स्मितनमितकटाक्षौ धर्मकर्मप्रदत्तौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

कनकमुकुटचूडौ पुष्पितोद्भूषिताङ्गौ
सकलवननिविष्टौ सुन्दरानन्दपुञ्जौ ।
चरणकमलदिव्यौ देवदेवादिसेव्यौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

अतिसुवलितगात्रौ गन्धमाल्यैर्विराजौ
कतिकतिरमणीनां सेव्यमानौ सुवेशौ ।
मुनिसुरगणनाथौ वेदशास्त्रादिविज्ञौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

अतिसुमधुरमूर्तौ दुष्टदर्पप्रशान्तौ
सुरवरसंवादौ द्वौ सर्वसिद्धिप्रदानौ ।
अतिरसवशमग्नौ गीतवाद्यप्रतानौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

अगमनिगमसारौ सृष्टिसंहारकारौ
वयसि नवकिशोरौ नित्यवृन्दावनस्थौ ।
शमनभयविनाशौ पापिनस्तारवन्तौ
भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

इदं मनोहरं स्तोत्रं श्रद्धया यः पठेन्नरः ।
राधिकाकृष्णचन्द्रौ च सिद्धिदौ नात्र संशयः ॥

पूजाके पश्चात् अपनी इच्छानुसार नियमितरूपसे भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाके मन्त्रका जप करे—

श्रीकृष्ण-मन्त्र

(१) अष्टादशाक्षर-मन्त्र

ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।

(२) दशाक्षर-मन्त्र

ॐ गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।

(३) गोपाल-गायत्री

ॐ कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रयोदयात् ।

(१) श्रीराधा-मन्त्र

ॐ ह्रीं श्रीराधिकायै नमः ।

(२) श्रीराधा-गायत्री

ॐ ह्रीं राधिकायै विद्महे गान्धर्विकायै विधीमहि तन्नो राधा प्रचोदयात् ।

श्रीराधामाधव-युगल महाभाव-रसराज ।
करुना करियो दीन पै रहियो हदयँ बिराज ॥
दीजौ निज पद कमल की प्रीति पवित्र अनन्य ।
प्रभु-सुख-हित सेवा बनै सुचि जीवन हो धन्य ॥

गृहस्थ क्या करे ?

वर्तेत तेषु गृहवानक्रुद्ध्यन्ननसूयकः । पञ्चभिः सततं यज्ञैर्विघसाशी यजेत च ॥

(महा०, शान्ति० २३५ । २५)

'गृहस्थ पुरुष क्रोध और ईर्ष्यासे रहित होकर व्यवहार करे, नित्य पञ्चयज्ञ करे और देवता, पितर तथा अतिथियोंको भोजन करानेके बाद भोजन करे ।'

बहुदेवोपासना वरदान है

(श्रीरामचन्द्रजी शर्मा, शास्त्री, एम्० ए०)

कुछ लोग प्रायः यह शंका किया करते हैं कि हमारे हिन्दू-धर्ममें अनेक देवी-देवता हैं, अनेक धर्मग्रन्थ हैं, ऐसी स्थितिमें किस ग्रन्थको धर्मग्रन्थ मानें और किस देवता अथवा भगवान्को आराध्य? किसका भजन करें और किसकी उपासना? निश्चय ही नहीं होता। अन्य धर्म एवं सम्प्रदायोंमें यह समस्या नहीं है, न तो अनेक देवोंकी आराधना है और न अनेक ग्रन्थोंके पठन-पाठनका बोझ।

आधुनिक शिक्षासे प्रभावित महानुभाव प्रायः बहुदेवोपासना एवं वर्ण-व्यवस्थाको पतनका कारण बताया करते हैं, परंतु यह सत्य नहीं है। धर्म-सम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज कहा करते थे कि 'वेदसे लेकर स्मृति, पुराण, इतिहास, रामायण, महाभारत और हनुमानचालीसातक सभी धर्मग्रन्थ हैं। आपको जो रुचे और जितना श्रम कर सकें उतना उसका अभ्यास करते रहें, इससे अभीष्टसिद्धि प्राप्त होगी। जिस भगवद्रूप अथवा देवविग्रहके प्रति आपके मनमें आस्था एवं पूज्यभाव जाग्रत् हो, अन्तःकरण द्रवित हो उसीकी उपासना करें, पूर्ण फलकी प्राप्ति होगी।'

साधक भली प्रकार जानते हैं, मनुष्योंको सभी पदार्थ एवं भोगसामग्री सीमित मात्रामें ही प्राप्त है, परंतु भगवान्में ये सब पदार्थ—ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदि समग्र रूपमें विद्यमान हैं। मानव अपने अभावकी पूर्तिके लिये ही परमात्माकी ओर बढ़कर उनसे मिलकर सुखी होना चाहता है। बस, यही उपासना है। परमात्माके पास पहुँचनेके उपायोंका नाम ही उपासना है।

अब प्रश्न आता है अनेक देवोंका। वास्तविकता यह है कि हमारा सनातनधर्म किसी मनुष्यका, किसी काल-विशेषमें बनाया हुआ मत अथवा सम्प्रदाय नहीं है। यह सदासे है और सदा रहेगा, क्योंकि भगवान्का ही बनाया हुआ है, अपौरुषेय है। यह सर्वविदित सत्य है कि प्रत्येक व्यक्तिकी रुचि, प्रत्येक विषय एवं पदार्थके प्रति अपनी निजी होती है। जैसे एक ही पिताकी संतानोंमें एक विनयी है तो दूसरा अत्यन्त क्रोधी, एकको मधुर व्यञ्जन अच्छे लगते हैं तो दूसरेको मृदु पदार्थ बिलकुल नहीं भाते। जिसको जो पदार्थ रुचिकर है, उसीसे उसकी तृप्ति हो जाती है, अन्यकी आवश्यकता नहीं। विभिन्न पदार्थ-भक्षणसे भी तृप्ति सबकी समान होती है। ठीक उसी प्रकार भगवद्रूप एवं देवविग्रहके विषयमें समझ लेना चाहिये। एक व्यक्ति परम तामसी है और दूसरा परम सात्त्विकी। यदि दोनोंको एक ही देवताकी आराधना बता दी जाय तो यह सम्भव नहीं कि दोनोंका मन उसमें समान-रूपसे रम सके। इसलिये इस उपासनासे दोनोंका समान सहज लगाव न होगा और ध्येय-प्राप्तिमें भी अन्तर रहेगा। इस संदर्भमें सनातनधर्ममें भगवान्को प्राप्त करनेके लिये विविध पूजा, अर्चा और साधनक्रम हैं, इनमें जो अपने अनुकूल पड़े उसपर बढ़कर लक्ष्यप्राप्ति करना सरल पड़ता है। स्मरण रहे, सभी साधन अथवा मार्ग पहुँचते वहीं हैं, क्योंकि गन्तव्य अथवा प्राप्तव्य वही तत्त्व है। मुण्डकोपनिषद्में कहा है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं
गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

(३।२।८)

'जैसे नदी समुद्रकी ओर बहती हुई अपना नाम-रूप खोकर समुद्रमें समा जाती है, उसी प्रकार ज्ञानी भक्त अपने नाम-रूप-साधन आदि भुलाकर परात्पर परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं।' यही उपासनाकी चरम परिणति है।

शिवमहिम्नःस्तोत्रका वचन है—

रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात् प्रकृति एवं प्रवृत्तिके अनुसार रुचिके भेद एवं विचित्रताके अनुसार किसी धर्ममतका पथ कुछ सरल है तो किसीका कुछ कठिन। परंतु जिस प्रकार समस्त नदियोंकी एकमात्र गति अथवा आश्रय समुद्र ही है, उसी प्रकार अखिल साधनाओंका अन्तिम लक्ष्य परमात्मा ही है।

प्रसिद्ध विदेशी विद्वान् बर्नार्डशा हिन्दुत्वके इस वैशिष्ट्यसे

प्रभावित होकर उसकी प्रशंसामें लिखते हैं—'भारत तथा मिस्रके धर्मोंके एक महत्त्वपूर्ण संग्रहका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेके पश्चात् मैं स्यामकी खाड़ीमें यह निश्चय लिख रहा हूँ—'प्रथम दृष्टिपात एवं अवलोकन करनेपर देवताओंकी बहुलतासे भ्रम हो जाता है, परंतु शीघ्र ही बोध भी हो जाता है कि ये समस्त देवता भिन्न-भिन्न कार्यों, रूपों, उपाधि-भेद एवं नर-नारीके भेदानुसार एक ही मूल शक्ति परमात्माके ही विभिन्न स्वरूपमात्र हैं। इन सबसे परे गुण-काल आदिसे अतीत एक परब्रह्म है, जो विशेष स्थितिमें आकार—शरीर ग्रहण करता है। यही वह विशेषता है जो हिन्दूधर्मको संसारमें सर्वाधिक सहिष्णु एवं उदार बना देती है। वास्तविकता यह है कि हिन्दूधर्म इतना उदार, विशाल और व्यापक है कि कट्टर मेथोडिस्टसे लेकर सरल मूर्तिपूजकतक एक समान अपनत्व अनुभव कर सकते हैं।'

इस प्रकार हिन्दू-धर्ममें बहुदेवोपासना भ्रान्ति नहीं, प्रत्युत वरदान है, जो सब प्रकारके व्यक्तियोंको उनकी भिन्न-भिन्न रुचियों, प्रकृतियोंके अनुरूप परमात्माकी ओर बढ़नेके समान अवसर प्रदान करती है।

मनुष्यमें देवत्वका आधान

(श्रीआनन्दबिहारीजी पाठक, एम्० ए०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

आज देशवासियोंका चरित्र दिनोंदिन गिरता जा रहा है। मनुष्यके हृदयसे मानवताकी भावना समाप्त होती-सी दिखलायी पड़ रही है। हमारा देश ही नहीं, प्रत्युत सारा विश्व ही विपथपर बढ़ता जा रहा है और आणविक विनाशके कगारपर खड़ा है। अतः इसपर शीघ्र ही अंकुश लगाये जानेकी आवश्यकता है।

अपने चरित्रगत सुसंस्कारोंका निर्माण करके हम भारतवासी प्राचीन कालसे ही जगद्गुरुके रूपमें समादृत होते रहे हैं। इसलिये उसी आदर्श मार्गका अवलम्बन करके हम अपने आपको ही नहीं, अपितु सारे विश्वको त्राण दिलानेमें समर्थ हो सकते हैं। मनुष्यको मनुष्य बनाये रखनेके लिये, उसमें मानवीय सद्विचारोंके साथ-साथ देवत्व-भावनाका आधान करनेके लिये सुनियोजित रूपसे कार्यशील होना अत्यन्त आवश्यक है।

परमपिता परमात्माकी सृष्टिमें मानवोंकी रचना सर्वोत्तम सृष्टि मानी जाती है, क्योंकि वह सभी प्राणियोंमें बुद्धि-विवेकसे सम्पन्न और मननशील होता है। बुद्धि एवं विवेचनाशक्ति तो पशु, पक्षी तथा मानवेतर सभी प्राणियोंमें भी हैं, किंतु मनुष्यमें पितृ-पितामह-परम्परागत ज्ञान, ऐश्वर्य तथा वैज्ञानिक आविष्कारोंकी उपलब्धिके साथ-साथ ईश्वरीय ज्ञानतकका वेदादि शास्त्रोंके द्वारा समस्त विश्वके और भूगोल-खगोलकी भी पूर्ण जानकारी प्राप्त करनेकी क्षमता है, जो समस्त मानवेतर प्राणियोंसे विलक्षण है। इसी विलक्षणताके आधारपर वह साक्षात् भगवान्तकको जानकर उनकी प्राप्तिकर कृतकृत्य हो सकता है और देवत्वको प्राप्त कर सकता है। यदि मनुष्य सद्बुद्धिसे काम नहीं लेता, रजोगुण किंवा तमोगुणके आश्रित होता है तो वह पशुओंके ही समकक्ष हो जाता है। इस पाशविक अथवा दानवी प्रवृत्तिको नष्ट करके दिव्यत्वभावको ग्रहण करनेपर ही मनुष्य मनुष्य बन पाता है तथा देवत्वपूर्ण भावोंके अपनानेपर ही वह पाशविक एवं आसुरी वृत्तियोंका दमन करके एक ऐसी मर्यादा स्थापित करनेमें सफल होता है, जिससे उसमें शान्ति और आनन्दका संचार होकर उसका जीवन आदर्शपूर्ण एवं देवत्वमय हो पाता है।

बुद्धि सत्त्व-गुणोंसे युक्त होकर संचालित होनेपर ऊर्ध्व-मुखी, धर्ममयी और देवत्व-भावनाओंसे पूर्ण होकर अग्रसर होती है और मनुष्यको यह धर्मपालक, कर्तव्यनिष्ठ, सदाचारी एवं आदर्श संस्कार-सम्पन्न बनाती है। रजोगुणके आधिक्य होनेसे मनुष्य भोग-विलासोंमें आसक्त हो जाता है और यदि उसकी बुद्धि तमोगुणी बन जाती है तो उसकी सारी कर्तव्य-शक्ति एवं विवेकशीलता नष्ट होकर उसमें आसुरी अथवा पाशविक वृत्तियाँ भर जाती हैं।

मनुष्य यदि पतनोन्मुख हुआ और उसमें स्वार्थके कारण हिंसा, परस्वापहरण आदिकी दुष्प्रवृत्तियाँ जड़ पकड़ लेती हैं तो वह हिंस्र पशु और दानवोंसे भी नीचे चला जाता है, किंतु यदि संतोंके संगसे ज्ञान, परोपकार, दया, दान, तपश्चर्या आदिकी सत्प्रवृत्तियाँ तीव्रतासे प्रविष्ट होती हैं तो वह संत, महात्मा,

ऋषि, मुनि तथा देवताओंकी कोटिमें पहुँचकर पूज्य, श्रद्धेय, वन्दनीय एवं आश्रयणीय बन जाता है।

इसके लिये आवश्यक यह है कि मनुष्यके बचपनमें ही अच्छे संस्कार डाले जायँ, उसमें सत्त्वगुण अर्थात् सात्त्विक प्रवृत्तियोंके आधान कराये जायँ। बच्चोंको आदर्श चरित्रवान् बनानेके लिये उन्हें अच्छे वातावरणमें रखा जाय और उनकी सत्प्रवृत्तियोंको ही अंकुरित और अच्छे संस्कारोंका समायोजन करके मनुष्यताके साथ देवत्वके आधान करानेकी चेष्टा माता-पिता, अभिभावकों एवं गुरुजनोंद्वारा की जानी चाहिये। महापुरुषों, संतों, मनीषियों एवं ऋषि-मुनियोंके जीवन-चरितका अध्ययन करनेपर यह ज्ञात होता है कि वे प्रारम्भसे ही अपने श्रेष्ठ माता-पिता, शिक्षक, अभिभावक और उत्तम सहचरोंके साथ शिक्षित-दीक्षित होते रहे। प्राचीन कालमें ऋषि-आश्रमोंका पवित्र वातावरण, पवित्र नदियों, तीर्थस्थलों, गौ आदि सात्त्विक जीवोंका सांनिध्य और पवित्र वेश-भूषा, सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय, संध्या, सूर्योपासना, श्रेष्ठ मन्त्रोंके जप, देवताओंकी स्तुति आदिके द्वारा उनकी बुद्धि शुद्ध-से-शुद्धतर एवं सूक्ष्म होती चली जाती थी और शुद्ध धी एवं धारणा-शक्तिसे युक्त मेधावी विद्यार्थीके परिज्ञात एवं समधीत वस्तु विस्मृत भी नहीं होते थे। इससे उसकी साधना भी तीव्र हो जाती और वह देवत्वकी ओर उन्मुख होकर **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'**के न्यायसे देवकोटिमें प्रविष्ट होकर देवताओंसे व्यवहार करनेमें समर्थ हो सकता था।

अतः कल्याणकामी बुद्धिमान् पुरुषको विष एवं सर्पके समान कुसंग, असत्-साहित्य तथा सभी अपकर्मों एवं कुसंस्कारोंसे दूर रहकर सत्संग-सेवन, स्वाध्याय-परायण और प्रत्येक क्षणको भगवत्सेवा, भगवत्स्मरण आदि श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सत्कर्मोंमें प्रयुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

वेदों, पुराणों एवं अन्य धर्मशास्त्रादिमें इसीलिये सुसंस्कारोंके आधानकी आवश्यकता बतलायी गयी है। जिस प्रकार खानसे हीरा, सोना आदिके निकलनेपर उसमें चमक-दमक, प्रकाश-सौन्दर्यके लिये उसे तपाना, तराश करके गंदगियोंको हटाकर उसे परिष्कृत कर तेजोमय एवं दीप्तिमान् बनाया जाता है, उसी प्रकार मनुष्योंमें मानवीय शक्ति एवं देवत्व-भावनाका आधान करनेके लिये उसे सुसंस्कृत किया जाना आवश्यक होता है। विधिपूर्वक संस्कार-साधनसे बच्चोंमें दिव्य ज्ञान एवं देवत्व-भावका विकास होता है, जिससे वह आत्मा-परमात्माके सम्बन्धोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके अपने मानव-जीवनको सार्थक बनानेमें सफल होता है। सुसंस्कार ही मनुष्यको पाप, अज्ञान और अधर्मसे दूर रखकर उन्हें आचार-विचार, कर्मनिष्ठता और ज्ञान-विज्ञानसे संयुक्त करते हैं। इससे मनुष्यमें सद्बुद्धि बनी रहती है और उसके हृदयमें त्याग, संयम, प्रेम, उदारता, धर्मनिष्ठता, कर्तव्य-परायणता आदि उच्च भावनाएँ आ विराजती हैं। इस दैवी सम्पत्तिके फलस्वरूप वह जीवनमें सच्चा सुख और शान्ति पाता है।

देवत्वपूर्ण भावनाओंके आधान होनेपर मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य जानने, शास्त्रों एवं संत-मनीषियोंसे अपने कर्मके लिये परामर्श करने, सदाचारकी रक्षा करने, विवेकमय जीवनाचरण-पालन करनेके साथ अपने और दूसरोंके लिये आत्मोन्नतिका मार्ग प्रशस्त करना चाहता है। वह मनुष्य रहकर भी ऐसे सत्कर्मोंके करनेमें समर्थ हो जाता है, जिससे उसे देवतातककी संज्ञा दी जाती है।

त्रिदेवोंका स्वरूप-रहस्य और उनकी अभिन्नता

(स्वामी श्रीसदानन्दजी सरस्वती)

सम्पूर्ण विश्वको सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करनेवाले अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चाधिष्ठानभूत स्वप्रकाश सच्चिदानन्दघन परमात्मासे ही निखिल प्रपञ्चकी उत्पत्ति, स्थिति एवं अन्तमें उनमें ही सम्प्रविष्टि भी होती है। **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।'** (तैत्ति०, आर० ३।१।१)

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकारिणी ब्राह्मी महाशक्ति ही समस्त अन्य अचिन्त्य, अनन्त शक्तियोंका केन्द्र है। अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्डोत्पादिनी रजोगुणात्मिका-शक्ति-विशिष्ट परमात्मा ब्रह्मा, अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-संचालिनी सत्त्व-गुणात्मिका-शक्ति-विशिष्ट परमात्मा विष्णु, अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्डसंहारिणी तमोगुणात्मिका-शक्ति-विशिष्ट

परमात्मा महेश्वर शब्दोंसे व्यवहृत होता है।

मायोपाधिक सर्वज्ञ शक्तिमान् सर्वेश्वर सर्वाधार एक परमेश्वर ही उत्पादक ब्रह्मा, पालक विष्णु, संहारक महेश्वर कहा जाता है, मायागत जो निरतिशय सत्त्व गुण है, वह उस परमेश्वरकी इच्छासे लोगोंपर अनुग्रह करके ब्रह्मादि त्रिदेवोंके रूपमें प्रकट होता है। दण्ड-कमण्डलु धारण करनेवाला चतुर्मुख-मूर्तिसे उपहित परमेश्वर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मादिसे उपहित परमेश्वर जगत्के पालक विष्णु और त्रिनयन, त्रिशूलहस्त-विशिष्ट-मूर्तिसे उपहित परमेश्वर शिव जगत्का संहारकर्ता होता है। एक परमेश्वर ही त्रिदेव-रूप है। श्रुति कहती है—

'स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः परमः स्वराट् स एव विष्णुः।'

अर्थात् माया-उपहित परमेश्वर ही ब्रह्मा-रूप है, शिवरूप है और विष्णुरूप है। आचार्योंका कथन है—

एकैव मूर्तिस्त्रिविधा विभिन्ना
सामान्यमेषां प्रथमाऽवरत्वम्।
हरेर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्
द्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ॥

एक ही परमेश्वर ब्रह्मादि त्रिमूर्ति-भेदसे तीन रूपोंमें माना जाता है। इन तीनोंकी गणनामें प्राथम्य एवं अन्त्यका कोई नियम नहीं है और न उसकी श्रेष्ठता या हीनतासे ही तात्पर्य है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों देव अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार उपासना करने योग्य हैं। किन्हीं लोगोंका कथन है कि जगत्का स्रष्टा हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मा ईश्वर नहीं हैं, किंतु जीव-विशेष है तथा अन्तर्यामी परमेश्वरसे आविष्ट है। वह समष्टि लिंगका अभिमानी तथा सत्त्वलोकमें निवास करनेवाला है। ऐसे हिरण्यगर्भकी जीवरूपता—**'वै शरीरी प्रथमा'** इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ही सिद्ध है और शिव, विष्णु—यह दो मूर्ति तो मायाके शुद्ध सत्त्वगुणका परिणाम होनेसे ईश्वररूप है। यह वार्ता महाभारतमें भी कही गयी है—

रुद्रो नारायणश्चैवेत्येकं सत्त्वं द्विधा कृतम्।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तित्वं सर्वकर्मसु॥

हे कौन्तेय! उस परमेश्वरने अपनी मायाका शुद्ध सत्त्वगुण रुद्र, नारायण इस रूपसे दो प्रकारका किया है। कई लोग कहते हैं कि विष्णुकी भक्ति मोक्षको देनेवाली है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात्।
ज्ञानं महेश्वरादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥

(मत्स्य० ६८।४१)

'मनुष्य आरोग्यार्थ भास्करकी, सम्पत्त्यर्थ अग्निदेवकी, ज्ञानार्थ महेश्वरकी और मोक्षार्थ विष्णुकी उपासना करे।'

कई एक शैव-मतावलम्बी कहते हैं कि साम्बसदाशिव-मूर्तिसे उपहित हुआ वह मायोपहित परमेश्वर परम शिव है। वही मुमुक्षुजनोंके उपासनाके योग्य है। श्रुति भी कहती है—

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्॥

(कैवल्योपनिषद् ७)

अर्थात् 'जो उमापति भगवान् शङ्कर त्रिनेत्रधारी, नीलकण्ठ, परम शान्त तथा सर्वसमर्थ सर्वेश्वर हैं, उन सर्वसाक्षी परमेश्वरका ध्यान कर मुमुक्षुजन अन्धकारसे ज्योतिःस्वरूप सम्पूर्ण जीवोंके मूलकारण उन्हीं परमात्माको प्राप्त होते हैं।' उस परमशिवकी ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों मूर्ति हैं—

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।

(कैवल्योपनिषद् ८)

—इत्यादि श्रुतिमें ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी उस मायोपाधिक परमेश्वरकी ही विभूतिरूपताका कथन किया गया है। पुराणमें भी कहा गया है—

यदाज्ञया जगत्स्रष्टा विरञ्चिः पालको हरिः।
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने॥

'जिस परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्मा, विष्णु और कालरुद्र, सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं, उस पिनाकधारी भगवान् शङ्करको नमस्कार है।'

कई एक मतावलम्बी शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी तथा लक्ष्मीपति जो निरतिशय सत्त्व-मूर्ति है, उस मूर्तिसे उपहित हुआ एवं मायोपहित परमात्मा ही परम वासुदेव है—ऐसा मानते हैं। वह परम वासुदेव ही मुमुक्षुजनोंके लिये उपासनीय है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—ते तीनों उस परम वासुदेवकी ही विभूति हैं—

तमेव विद्वानमृत इह भवति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

—इत्यादि श्रुति तथा **'मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्'** इत्यादि स्मृतिसे मुमुक्षुजनोंके ध्येय, ज्ञेय, परमाराध्य वासुदेवका ही कथन किया गया है।

कुछ लोग कहते हैं कि हिरण्यगर्भ ही मायोपहित परमेश्वर है। अतः इस हिरण्यगर्भकी परमेश्वररूपता, अनेक श्रुति-स्मृतियोंमें विद्यमान है। अतः वह हिरण्यगर्भ ही मुमुक्षुजनोंके लिये उपासनाके योग्य है।

'तद्वैचित्र्यादनेकधा' (पञ्चदशी) वैचित्र्य ही उपाधिभूत मायाके उत्पादकत्व, पालकत्व, संहारकत्व-शक्तिके भेदसे ब्रह्मादि-देवत्रयमें भी कल्पित भेद मान्य होता है, किंतु उत्पादकत्व, पालकत्व एवं संहारकत्व-शक्तियोंसे उपाधिभूत मायागत समस्त प्रतिविम्बोंका मूलभूत जो विम्ब है, वह तो सर्वदा एक ही है। जैसे एक ही विम्बभूत आदित्य रक्त, नील, पीत, हरित-वर्णके उपनेत्रों (चश्मों) से देखनेसे तत्तद् वर्णों-जैसा दीखता है, वैसे एक ही ईश्वर शिव-भावनासे भावित, विष्णु-भावनासे भावित एवं राम-कृष्ण-भावनासे भावित भक्तोंको क्रमशः शिव, विष्णु, राम और कृष्णादि नानारूपोंमें दृष्टिगोचर होता है। वही पुराणोंमें भावनाके सहकारसे तत्तद्-रूपोंमें परिगीयमान है। किम्बहुना, कल्पभेदसे कल्पित भेदकी चर्चा भी शास्त्रोंमें आयी है—

क्वचिद् ब्रह्मा क्वचिद् विष्णुः क्वचिद् रुद्रः प्रशस्यते।
तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः॥
तानि तानि प्रणीतानि विद्वांस्तत्र न मुह्यति।

कहीं ब्रह्मा, कहीं विष्णु, कहीं रुद्ररूपसे तत्तत्कल्पोंके भेदसे महर्षियोंने तत्तत्पुराणोंमें शिवादि-रूपोंमें एक ही परतत्त्वका कथन किया है, उसमें विद्वान्‌को मोह नहीं होता अर्थात् विद्वान् उस तत्त्वको उपाधितः भेद एवं स्वरूपतः अभेदरूपसे देखता है। पुराणोंमें भी कहा गया है—

बुद्धिर्गणेशो मम चक्षुरर्कः
शिवो ममात्मा मम शक्तिराद्या।
विभेदबुद्ध्या मयि ये भजन्ति
मामङ्गहीनाः कलयन्ति मूढाः॥

भगवान् विष्णु कहते हैं कि 'मेरी बुद्धि गणेश, नेत्र सूर्य, शिव मेरा आत्मा एवं आद्या भगवती ही मेरी शक्ति है, भेदरहित मुझ परमात्मामें जो भेद-बुद्धि रखता है और इन देवताओंकी पूजा किये बिना मेरी आराधना करता है, वह मानो मेरे अङ्गोंका ही उच्छेद करता है।'

इससे स्पष्ट है कि भगवान् शिव या विष्णु या ब्रह्माजीको भी अपनी विशेषता या महत्ता स्वीकार नहीं है, वे या तो तीनोंको एक ही स्वरूप मानते हैं अथवा अन्योंको अपनेसे बड़ा मानकर उनकी पूजा, उपासना एवं संस्तवनमें ही आनन्दका अनुभव करते हैं। अतः इन तीनोंमें किसी प्रकारका लेशमात्र भी भेद नहीं है और तीनों साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हैं।

तृष्णाके त्यागमें ही सुख है

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता। अधर्मबहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥

(महा०,वन० २।३५।३६)

'तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठा है, सदा ही उद्वेग उत्पन्न करनेवाली मानी गयी है। उसके द्वारा अधिकतर अधर्ममें ही प्रवृत्ति होती है। वह बड़ी भयङ्कर है और पापकर्मोंमें ही बाँध रखनेवाली है। दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये जिसका त्याग अत्यन्त कठिन है, जो मनुष्यके बूढ़े होनेपर भी बूढ़ी नहीं होती—सदा तरुण ही बनी रहती है, जो मानवके लिये प्राण-नाशक रोगके समान है, ऐसी तृष्णाको जो त्याग देता है, उसीको सुख मिलता है।'

विभिन्न दर्शनोंके अनुसार देवाधिदेव परमात्माका स्वरूप

(राष्ट्रपतिसम्मानित डॉ॰ श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामी)

[विशेषाङ्क पृ॰ सं॰ १२४ से आगे]

दार्शनिक दृष्टिसे ईश्वर—कारुणिक

न्यायसूत्रके भाष्यमें वात्स्यायनने कहा है—'आप्त व्यक्तिके द्वारा प्रणीत होनेके कारण ही वेद प्रामाणिक हैं, क्योंकि आप्त व्यक्ति जिस पदार्थका उपदेश करता है, उसका वह साक्षात्कार किये रहता है। आप्त पुरुषको जिसे उपदेश करना रहता है, उसके प्रति अनुकम्पा भी रहती है। साक्षात्कारकृत वस्तुको बतानेकी इच्छा भी रहती है। इस प्रकार यथार्थ ज्ञान, भूतदया और उसके उपदेश करनेकी इच्छा इन तीनों विशेषणोंसे विशिष्ट ही आप्त पुरुष होता है। इसके विषय-में विचार किया गया है कि—'**किं पुनराप्तानां प्रामाण्यम् ?**' उत्तरमें कहा गया है कि-**(१) साक्षात्कृतधर्मता, (२) भूतदया, (३) यथाभूतार्थचिख्यापयिषा। आप्ताः खलु साक्षात्कृत-धर्माणः। इदं हातव्यमिदमस्य हानहेतुः, इदमस्याधिगन्तव्यम्, इदमस्याधिगमे हेतुरिति भूतान्यनुकम्पन्ते**' (न्याय॰ २। १। ६८ का भाष्य)। वाचस्पति मिश्रने इन्द्रिय-पटुता भी एक और विशेषण दिया है। शरीर, भुवन आदि कार्योंका कर्ता सभी वस्तुतत्त्वोंका ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञ होता है। यह पुरुष क्लेश, कर्मविपाक और वासनासे शून्य रहता है। अर्थात् ईश्वरमें अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश नहीं हैं। पाप-पुण्यकर्म भी नहीं हैं।

कर्मका फल जन्म, आयु और भोग नहीं है एवं भोगानुकूल वासना और संस्कार भी उसका नहीं है। साथ ही वह बहुत कारुणिक है। अज्ञानी व्यक्ति अपने हितसाधन और अहित-परिहारका उपाय नहीं जानते एवं उन्हें अनेक प्रकारकी दुःखाग्निसे संतप्त देखकर ईश्वरको करुणा होती है। जिसको राग, द्वेष और क्लेश रहता है, उसीको दूसरेका दुःख देखकर करुणा नहीं होती। अज्ञके दुःखको देखकर संताप होना स्वाभाविक ही है। अतः ईश्वर प्राणिमात्रके हितोपदेशके लिये तत्पर हैं। यथार्थ उपदेश करनेवाला परम कारुणिक ईश्वर सभी प्रकारकी सृष्टि कर प्राणियोंके हित-प्राप्ति और अहितके परिहारका उपदेश करता है। पितृस्थानीय उसके उपदेशको आदरपूर्वक ग्रहण करना और उसके अनुसार आचरण करना मनुष्यका कर्तव्य है। वेदोंके मन्त्रोंमें ईश्वरको माता, पिता, बन्धु, सखा, पुत्र तथा भाई कहा गया है। अतः अपनी संततिके प्रति उसका स्नेह और करुणा होना स्वाभाविक है। वैष्णव कवियोंने कहा ही है—'**स्थायिवत्सलता स्नेहे पुत्रास्त्वालम्बनं मतम्**' उपासकके प्रति स्नेह-वात्सल्य स्वाभाविक ही है। गीतामें भी कहा है—

'पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।'

(गीता ९। १७)

ईश्वरके कारुण्यके विषयमें आपत्ति और समाधान

पूर्व मीमांसामें ईश्वर ही नहीं माना जाता, अतः उसमें करुणाका प्रश्न ही नहीं है। नैयायिकोंने सर्वज्ञ, प्रेक्षावान्को ईश्वर माना है। किंतु ईश्वरको जगत्के निर्माण करनेमें क्या प्रयोजन है? वह आप्तकाम है, इसलिये उसे विषयकी अभिलाषा न होनेसे निर्माणकी आवश्यकता नहीं है। लीला-विस्तार और क्रीडाके लिये भी निर्माण संगत नहीं है, कारण, लीला और क्रीडामें भी अप्राप्त सुखका ही लाभ रहता है। जिसे सभी वस्तुएँ प्राप्त हैं, उसके लिये यह संगत नहीं है।

करुणापरायण होकर जगत्का निर्माण करना भी संगत नहीं है। यदि करुणावश सृष्टि करता तो सुखमय जगत्की ही सृष्टि करता दुःखमय नहीं। प्राणियोंके धर्म और अधर्मसे सापेक्ष सृष्टि होनेके कारण सुखमय सृष्टि सम्भव नहीं है—यह भी नहीं कहा जा सकता। अधर्म दुःखका साधन है, किंतु वह जड है, अतः ईश्वराधिष्ठित हुए बिना अचेतन अधर्म दुःखका जनक नहीं हो सकता— इसे भी ईश्वर जानता है। कारुणिक ईश्वर अधर्मका अधिष्ठाता क्यों होता है? अतः न तो ईश्वर सर्वज्ञ हो सकता है और न उसकी सिद्धि ही हो सकती है। यदि चेतन ईश्वरसे अधिष्ठित हुए बिना ही अचेतन अधर्म कार्यका जनक हो सकता है, तो परमाणुसमूह भी ईश्वरानधिष्ठित हुए बिना ही सृष्टि कर लेगा, ईश्वरकी क्या आवश्यकता है?

यदि यह कहा जाय कि जीवको दुःखका अनुभव न हो

तो वैराग्य नहीं होगा और वैराग्यके बिना अपवर्गकी प्राप्ति नहीं होगी। अतः दुःखमय जगत्‌के निर्माणसे भी ईश्वरकी करुणा ही व्यक्त होती है। किंतु जीवके दुःखकी उत्पत्तिमें ईश्वरको विमुख रहना चाहिये। दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही तो अपवर्ग या मोक्ष है। अधर्मका अधिष्ठाता यदि ईश्वर न हो तो अनायास ही मोक्षकी प्राप्ति रहेगी। यदि जगत्‌की सृष्टि ईश्वरका स्वभाव माना जाय तब तो बिना किसी प्रयोजनके सृष्टि करनेवाले ईश्वरको प्रेक्षावान् नहीं कहा जा सकता है। कोई भी कुशल व्यक्ति निष्प्रयोजन किसी कार्यको नहीं करता।

इसके समाधानमें दार्शनिकोंने कहा है कि ईश्वरके कारुणिक और उत्कृष्ट महिमाशाली होनेपर वस्तुके सामर्थ्यको अन्यथा नहीं कर सकते। अनित्य धर्म और अधर्म ईश्वरकी महिमासे नित्य नहीं हो सकता। सुखप्रद धर्म और दुःखप्रद अधर्म अपने फलको उत्पन्न किये बिना नष्ट नहीं हो सकते, क्योंकि यह उनका स्वभाव है। फल देनेसे पहले अधर्मका विनाश कर अधर्मका अधिष्ठाता ईश्वर नहीं होगा— यह नहीं हो सकता है। ऐसा करनेपर वस्तुके सामर्थ्यका उल्लङ्घन होगा। अतः कारुणिक होकर भी जीवके कर्मफलको अन्यथा नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करनेपर ईश्वर स्वेच्छाचारी होगा और जीवका शरीर-लाभ आकस्मिक हो जायगा। फलतः जीवके जन्म, मृत्यु, भोग, अपवर्ग सभी आकस्मिक हो जायँगे। साथ ही जगत्‌की विचित्रता भी समाप्त हो जायगी। फलतः जीव सभी कर्मोंको छोड़कर उच्छिन्न हो जायगा। जीव और जगत्‌का विनाश न हो इसलिये कारुणिक ईश्वर भी अधर्मका अधिष्ठाता होता है, अन्यथा वह विषमकारी निर्दय प्रेक्षाशून्य हो जायगा। (न्यायतात्पर्य टीका ४। १। २१)।

जैसे तेज स्वभाववश दाह और ताप करता है, जल स्वभावसे सिञ्चन करता है, वैसे ही ईश्वर भी स्वभावसे ही स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको धारण करता है। प्रेक्षावान् ईश्वर जीवके धर्म और अधर्मकी अपेक्षाकर सृष्टि करता है अतः एक साथ सभीकी उत्पत्ति और विनाशकी सम्भावना नहीं है। इसी विषयको न्यायवार्तिक और **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** (ब्र० सू० २। १। ३३) में आचार्य शंकरने भी कहा है। आगम-प्रकरणमें गौडपादने भी कहा है—**'देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा'** (श्लोक ९)।

ईश्वरके सभी ज्ञान प्रत्यक्ष स्वरूप हैं, क्योंकि अनुमिति, उपमिति, शाब्द और स्मृति—ये चारों परोक्षज्ञान संस्कारजन्य होते हैं। ईश्वरका ज्ञान नित्य है, अतः ईश्वरके ज्ञानका जनक संस्कार नहीं हो सकता। विषयका प्रकाशस्वरूप ज्ञान जिसका नित्य है, उसके लिये विषयका प्रकाश नित्य होनेके कारण किसीसे जन्य नहीं हो सकता। जब ज्ञानका विनाश ही नहीं तो उसकी उत्पत्ति कैसी ? ज्ञान नित्य होनेसे अनित्य, अनुमिति आदि परोक्षज्ञान सम्भव नहीं है (न्या० वा० ४। १। २१)।

ईश्वरके गुण

ईश्वर आत्मपदार्थ है। जीवात्मा और परमात्माके रूपमें आत्माका ही भेद किया गया है। ईश्वर अनात्मा नहीं है। ईश्वरमें छः गुण माने गये हैं—संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग—ये पाँच सामान्य गुण और बुद्धि विशेष गुण है। आकाशमें भी छः गुण हैं—पाँच सामान्य गुण और शब्द विशेष गुण है। न्यायवार्तिककारने ईश्वरमें अव्याहत सर्वार्थ-विषयिणी इच्छाको गुण भी माना है। उनकी इच्छाके अनुसार कार्य होता है। यह ज्ञानके समान ही सर्वविषयक और नित्य है। मिथ्याज्ञानपूर्वक इच्छाको राग कहा जाता है, किंतु अविद्याके कारण रागात्मिका इच्छा होती है। ईश्वरमें अविद्या नहीं है, अतः रागात्मिका इच्छा नहीं है। वाचस्पतिने नित्य प्रयत्न भी स्वीकार किया है। इस प्रकार आठ गुण ईश्वरमें माने गये हैं।

पातञ्जल-सूत्रके व्यास-भाष्यमें कहा है—ईश्वरका ऐश्वर्य सर्वदा विद्यमान रहता है और वह सदा मुक्त है अर्थात् नित्य ऐश्वर्यशाली और नित्य मुक्त है—**'स सदैवेश्वरः सदैव मुक्त इति'** (पात० सू० १। २४ का भाष्य)।

किंतु न्यायवार्तिकमें कहा गया है कि ईश्वर बद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि उसे दुःख नहीं है। मुक्त भी नहीं हो सकता क्योंकि जिसका बन्धन सम्भव रहता है, उसीकी मुक्ति भी सम्भावित होती है। जिसका बन्धन नहीं उसकी मुक्ति कैसी ? क्योंकि **'मुच्लृ'** धातुका अर्थ बन्ध-विमोचन होता है। इसलिये ईश्वर न बद्ध है और न मुक्त।

ईश्वरका शरीर है या नहीं

न्यायभाष्यमें कहा गया है कि जैसे जीव ज्ञान आदि गुणोंसे विशिष्ट है, वैसे ही ईश्वर भी है। ईश्वरका ज्ञानादि गुण

नित्य है और जीवका ज्ञानादि गुण अनित्य है। जैसे जीवके बुद्धि आदि गुणवान् होनेसे शरीर, इन्द्रिय आदि हैं, वैसे ही ईश्वरके भी शरीर आदि हैं या नहीं? इस जिज्ञासाके उत्तरमें कहा गया है कि ईश्वरके शरीरादि माननेपर उसे नित्य या अनित्य दोमें एक मानना होगा। अनित्य शरीरादि माननेपर उनके जनक धर्म और अधर्मको भी मानना पड़ेगा। धर्मादि माननेपर उनके अधीन जीवके समान ईश्वरमें भी अनीश्वरत्व ही रहेगा। नित्य शरीर माननेपर दृष्टके विरुद्ध कल्पना करनी पड़ेगी। भोगायतन शरीर होता है। ईश्वरको सुख-दुःखका भोग नहीं करना है। अतः शरीरकी कल्पना ही नहीं हो सकती। भोगरहित शरीरकी कल्पना और उसकी नित्यत्व-कल्पना सभी विरुद्ध कल्पना हैं। ईश्वरके ज्ञान आदि नित्य गुणोंके रहनेपर ईश्वरके शरीरकी कल्पना ही व्यर्थ है। अवतारके शरीरकी स्थिति नित्य इच्छाके अनुसार होती है, अतः ईश्वरके शरीरका अवसर ही नहीं है (न्यायवा० पृ० ९५)।

(क्रमशः)

जैन आगमोंमें देववादकी अवधारणा

(अणुव्रत-अनुशास्ता, युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी)

[विशेषाङ्क पृ० सं० १२९ से आगे]

महत्ता चमत्कारसे नहीं होती

कुछ लोग चमत्कारमें विश्वास करते हैं। ऐसे लोग उस व्यक्तिको अपना इष्टदेव या आराध्यदेव मानते हैं, जो कोई चमत्कार कर दिखा सके। आजकल हमारे देशमें एक नया प्रदर्शन आया है—'फायर वाकिंग शो।' नंगे पाँव आगपर चलनेका प्रदर्शन। इसी प्रकार काँटोंपर सोना या चलना, अंगारे एवं लोहेकी कीलें निगलना, जबड़ोंको चीरना आदि क्रियाएँ हैं। ये सामने दिखायी देनेवाले चमत्कार हैं। इन्हें देखकर कुछ लोग सोचते हैं कि प्रदर्शन करनेवालोंके पास कोई दैवी शक्ति है। अन्यथा सब लोग जो काम नहीं कर सकते, कुछ व्यक्ति कैसे कर सकते हैं? किंतु वे इस बातको नहीं जानते कि चित्तकी एकाग्रता, आत्मविश्वास, संकल्पशक्ति, सम्मोहन एवं गतिका एकसरीखा प्रवाह आदि कुछ ऐसे निमित्त हैं, जिनको साधनेके बाद प्रदर्शन करनेमें विशेष कठिनाई नहीं होती।

कुछ लोग उन व्यक्तियोंको महान् मानकर पूजा करते हैं, जो देवताका आवाहन कर लेते हैं, आकाशमें गमन करते हैं और चामर आदि ऐश्वर्यसूचक वस्तुओंसे अभिमण्डित रहते हैं। किंतु आचार्य समन्तभद्रने इन सब चमत्कारोंको नगण्य मानकर अपने इष्टदेवकी स्तुतिमें लिखा है—

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्॥

भन्ते! एक मायावी व्यक्ति देवताओंको बुला सकता है, आकाशमें उड़ान भर सकता है और ऐश्वर्यका प्रदर्शन कर सकता है। इन साधारण-सी विशेषताओंके कारण आप हमसे महान् नहीं हैं। आपकी महत्ता राग-द्वेष-जैसे दुर्जय शत्रुओंपर विजय पानेके कारण है। इसलिये हम आपके उसी वैशिष्ट्यके प्रति प्रणत हैं।

शस्त्रधारणसे देवत्वमें विप्रतिपत्ति

जैनदर्शनमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वकी गम्भीर चर्चा है। सम्यक्त्वको परिभाषित करते हुए बताया गया है—**'हरहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो जिणपण्णत्तं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं'**—जो अर्हत्को अपना देव मानता है, जीवनभर पाँच महाव्रतोंका पालन करनेवाले शुद्ध साधुओंको अपना गुरु मानता है और केवल ज्ञानीद्वारा निरूपित तत्त्वको धर्मके रूपमें स्वीकार करता है, वह सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है। जिस व्यक्तिको सम्यक्त्वकी उपलब्धि हो जाती है, उसकी आस्था सही होती है, ज्ञान सम्यक् होता है और आचरणकी पवित्रता सधने लगती है। सम्यक्त्वकी प्राप्तिका सार है लक्ष्यकी दिशामें प्रस्थान। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है मोक्षका आरक्षण। इस तत्त्वत्रयीमें पहला स्थान देवका है।

आचार्य हेमचन्द्रने शस्त्रधारी और स्त्रीके साथ रहनेवाले देवको अस्वीकार कर, अहिंसक और ब्रह्मचारी देवको अपना आराध्य माना है। अपने आराध्यकी स्तुतिमें कहा है—

शमोऽद्भुतोऽद्भुतं रूपं सर्वात्मसु कृपाद्भुता।
सर्वाद्भुतनिधीशाय तुभ्यं भगवते नमः॥

'भन्ते! आपका उपशमभाव अद्भुत है, आपका रूप

अद्भुत है, सब प्राणियोंके प्रति आपकी करुणा अद्भुत है। आप विश्वकी सब निधियोंके स्वामी हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

देवता सर्वज्ञता और अर्हतासे सम्पन्न होते हैं

जैन-दर्शनमें देवको परिभाषित करते हुए कहा गया है—'**केवलज्ञानवान् अर्हन् देवः।**' इस परिभाषामें देवके साथ दो विशेषताओंकी प्रतिबद्धता है। पहली विशेषता है केवल ज्ञान। यह ज्ञानकी पूर्णताका सूचक है। संसारके जड-चेतन सब पदार्थोंके सब पर्यायोंको समग्र रूपसे जाननेवाला ज्ञान केवल ज्ञान है। इस ज्ञानकी उपलब्धिसे व्यक्ति सर्वज्ञ बन जाता है। संसारकी कोई भी वस्तु और कोई भी घटना उससे अज्ञात नहीं रहती। ज्ञाता और ज्ञेयके बीचकी दूरी समाप्त हो जाती है। वह त्रिकालज्ञ बनकर अपनी साधनाको सिद्धितक पहुँचा देता है।

दूसरा विशेषण है अर्हत्। अर्हत् शब्दके दो अर्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—क्षमतावान् और योग्यता-सम्पन्न। अक्षम और अयोग्य व्यक्ति कभी अर्हत् नहीं बन सकता। जो अर्हत् नहीं होता, वह लोकोत्तर-क्षेत्रमें देवत्वकी प्रतिष्ठा अर्जित नहीं कर सकता।

सर्वज्ञता और अर्हता एक नहीं है। सर्वज्ञताका सम्बन्ध केवल ज्ञानके साथ है जब कि अर्हता व्यक्तित्वकी अनेक क्षमताओंकी अभिव्यक्ति होनेसे प्राप्त होती है।

प्रभु बननेके लिये प्रभुकी पूजा

अर्हत्‌देव चार घनघात्य कर्मोंको क्षीणकर केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं। केवल दर्शन इसके साथ ही जुड़ा हुआ है। मोह-कर्मके क्षयसे आचरणकी परिपूर्णता या उज्ज्वलता सिद्ध होती है और अन्तराय कर्मके विलयसे आत्मामें छिपी हुई अनन्त शक्ति प्रकट हो जाती है। इन चार विशिष्ट गुणोंके अतिरिक्त उनके आठ प्रातिहार्य होते हैं। प्रातिहार्य शब्द विशेषताका बोधक है। वे ऐसी विशेषताएँ हैं, जो सामान्य केवलज्ञानीमें नहीं है। अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, देवदुंदुभि, स्फटिक सिंहासन, भामण्डल, छत्र और चामर—ये आठ अतिशय अर्हतोंके वैशिष्ट्यको प्रस्तुति देते हैं। उनके चौंतीस अतिशय और पैंतीस वचनातिशय भी प्रसिद्ध हैं।

तीर्थकी स्थापना अर्हतोंकी नियति है। इसके द्वारा वे धर्मकी साधनाका सामूहिकीकरण कर देते हैं। फलतः धर्मसंघ निर्मित हो जाता है। तीर्थकी स्थापना कर वे तीर्थंकर कहलाते हैं। जैन-साहित्यमें चौबीस तीर्थंकरोंका जीवन-चरित्र पूरे विस्तारके साथ वर्णित है। अन्य सब देवोंद्वारा वन्दनीय होनेके कारण ये देवाधिदेव कहलाते हैं। पूर्ववर्णित देवोंके पाँच प्रकारोंमें एक स्थान अर्हतोंका है। राग और द्वेषसे पूर्णतया मुक्त होनेके कारण इनका कोई अपना नहीं होता और कोई पराया नहीं। ये लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, निन्दा-प्रशंसा और सम्मान-अपमान—इन सभी द्वन्द्वात्मक प्रसंगोंमें तटस्थ रहते हैं। वे न अनुकूलतासे प्रभावित होते हैं और न प्रतिकूलतासे खिन्न होते हैं। सृष्टिके किसी भी कार्यमें उनका कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। सर्वशक्तिमान् होनेपर भी वे किसी व्यक्तिको बलप्रयोगसे धार्मिक भी नहीं बनाते। संसारमें सत्यका आलोक फैलाना इनका मुख्य उद्देश्य है। जिस परिसरमें अर्हत् देव विराजमान रहते हैं, वहाँसे एक सौ पचीस योजनतकके क्षेत्रमें ज्वर आदि रोग, पारस्परिक विरोध, ईति—धान्य आदिको नष्ट करनेवाले चूहों तथा अन्य पशु-पक्षियोंके उपद्रव, किसी जटिल उपद्रवसे होनेवाली सामूहिक मृत्यु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष तथा स्व-परराष्ट्रका भय आदि नहीं होते।

अर्हत् देवका व्यक्तित्व, उनकी क्षमता और उनके प्रभावकी बात सुनकर कोई भी व्यक्ति उनके प्रति श्रद्धासे प्रणत हो सकता है। पर जैन-दर्शनके अनुसार उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करना, उनकी स्तुति करना और उनके नामका जप करना ही पर्याप्त नहीं है। उनके जीवनसे प्रेरणा पाकर उन-जैसा पुरुषार्थ कर उनके चरण-चिह्नोंपर अग्रसर होना ही उनके प्रति प्रणत होने और उन्हें अपना आराध्य माननेकी वास्तविक सार्थकता है।

हे मन ! ऐसे ही काम कर, जिनसे देह छूटनेके बाद तेरी कीर्ति फैले। चन्दनकी भाँति घिसता-घिसता क्षीण होता चला जा, किंतु अन्तःकरणसे सज्जनोंको संतुष्ट कर।

भगवान् सूर्यके विविध रूपोंके दर्शन

भारतमें सूर्यपूजा, मन्दिर-निर्माण तथा प्रतिमाराधन आदि वैदिक ग्रन्थों, पुराणों और आगमोंमें अत्यन्त प्राचीन कालसे ही प्रसिद्ध है। नारदादि ऋषि एवं सूर्यवंशी क्षत्रिय सूर्याराधक थे। द्वापरमें श्रीकृष्ण-पुत्र साम्बने कुष्ठ-निवारणके लिये तीन विशिष्ट मन्दिर बनवाये और सूर्यकी आराधनासे उनकी कृपा प्राप्तकर कुष्ठरोगसे मुक्त हुए थे। साम्बने उदयकालीन प्रतिमायुक्त मन्दिर कोणार्क (उड़ीसा)में, मध्याह्नकालीन या माध्यन्दिन प्रतिमायुक्त कालप्री या कालपीनगरमें तथा सायंकालीन प्रतिमायुक्त मन्दिरका निर्माण मूलस्थान (मुलताननगर) में किया था। आज भारतमें भगवान् सूर्यनारायणके अनेक मन्दिर हैं और प्रत्येक घरमें उनकी पूजा-आराधनाकी भी सुदीर्घ परम्परा है। यहाँ उनमेंसे कुछ मन्दिरों तथा भगवान् सूर्यनारायणके अर्चा-विग्रहोंके दर्शन करानेका प्रयत्न किया जा रहा है—

१-कोणार्क (कोणादित्य) मन्दिर जगन्नाथपुरीसे समुद्रके किनारे पैदल मार्गसे बीस मील दूर है। इस मन्दिरमें कोई आराध्यमूर्ति नहीं है। कोणार्कको प्राचीन पद्मक्षेत्र कहा जाता है। साम्बने कोणादित्यकी आराधना की थी और एक सूर्यमूर्ति स्थापित की थी। वह मूर्ति अब पुरीमें है। किसी समय यह स्थान सौर-सम्प्रदायका प्रधान केन्द्र था। पासमें चन्द्रभागा नदी है। यहाँ माघशुक्ला सप्तमीको स्नान करना महापुण्यप्रद माना

जाता है। यहाँ चारों ओरसे पक्के घेरेके भीतर सूर्यदेवका विशाल मन्दिर है।

२-लोहार्गल- (राजस्थान) तीर्थमें एक विशाल सूर्य-मन्दिर है, पास ही शिवमन्दिर भी है। इन दोनोंके मध्य एक कुण्ड है, जो सूर्य-कुण्ड कहलाता है। लोहार्गल-क्षेत्रकी परिक्रमा, सूर्यकु[illegible] सूर्यभगवान्‌की पूजा करनेके पश्चात् प्रारम्भ की जाती है।

३-झालावाड़ जिलेमें चन्द्रभागा नदीके तटपर शङ्खोद्धार-तीर्थ है। स्कन्दपुराणानुसार अन्धक नामक महाप्रतापी दैत्यका वधकर भगवान्‌ने जिस स्थानपर खड़े होकर शङ्खनाद किया था, यह वही शङ्खोद्धार-तीर्थ है। यहाँ एक प्राचीन सूर्यमन्दिर है। कहा जाता है कि इन्द्रसे अर्जुनने सूर्य-प्रतिमा प्राप्त की और उसे यहाँ स्थापित किया। इस मूर्तिके दर्शन करने तथा इस मन्दिरके कला-कौशलको देखनेके लिये देश-विदेशसे दूर-दूरके यात्री यहाँ आते रहते हैं।

४-अयोध्यामें रामघाटसे पाँच मील दूर सूर्यकुण्ड है। इसी कुण्डके पश्चिम किनारेपर सूर्यनारायणका प्राचीन मन्दिर है।

५-कश्मीरमें अमरनाथ-मार्गपर मटन-तीर्थमें मार्तण्ड-मन्दिर नामका एक मन्दिर है, जिसमें प्रतिमा अवशेषरूपमें विद्यमान है।

६-अल्मोड़ा (उ० प्र०) में एक प्राचीन सूर्यमन्दिर है। यहाँकी सूर्य-प्रतिमा अद्भुत है। यहाँके सूर्य रथस्थ नहीं हैं, किंतु पादाच्छन्न हैं। पैरोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि वे बूट-जूता-जैसा कोई पादत्राण पहने हुए हैं।

७-कटारमल (अल्मोड़ेमें एक पहाड़की चोटी) पर एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक सूर्यमन्दिर है, यहाँ प्रतिष्ठित प्रतिमा कमलपर आसीन है।

८-प्रभासतीर्थके पूर्व-ईशानमें शीतला नामक अरण्यमें हिरण्य नदीके किनारे भ्रमयुक्त सांधार प्रासादकी शैलीपर बना हुआ एक सूर्यमन्दिर है। मन्दिरका शिखर और मण्डपके ऊपरका भाग नष्टप्राय हो गया है। यह मन्दिर सुन्दर कलात्मक है। ऊपरके भागमें ग्रासपट्टीकी जगह अश्व बने हुए हैं।

९-नर्मदा नदीके उत्तर तटपर बागड़िया ग्रामके पास भगवान् आदित्येश्वरका एक प्राचीन मन्दिर है। यहाँ पाँच राक्षसोंको सप्तर्षियोंके दर्शन हुए। ऋषियोंके उपदेशसे तप करके वे मुक्त हुए। यहाँ पुष्करिणीतीर्थपर सूर्यभगवान्का नित्य निवास माना जाता है। ग्रहणोंपर यहाँ स्नानका माहात्म्य है।

१०-गुजरातका प्रसिद्ध मोढ़ेराका सूर्यमन्दिर अप्सरा-तीर्थके पास है। कहा जाता है कि यहाँ उर्वशीने तपस्या की थी। मोढ़ेरा गाँवके उत्तर पुष्पावती नदीके तटपर एक प्राचीन सूर्यमन्दिर है, उसके पास सूर्यकुण्ड है। यह मन्दिर विशाल एवं कलापूर्ण है। श्रीरामने यहींपर यज्ञ किया था।

११-मतलगा (बेलगाँव, कर्नाटक) में प्रायः चार सौ वर्ष पुरानी सूर्यनारायणकी एक भव्य मूर्ति है, जो दो फुट ऊँची है। सूर्यमूर्तिके दाहिने जय और बायें विजयकी प्रतिमाएँ हैं। मूर्तिके नीचे (पीठपर) मध्यमें भगवान् सूर्यनारायणका मुख है और दोनों बाजुओंको मिलाकर सात अश्वोंके मुख हैं।

१२-अहमदाबादसे लगभग पचास मील दूर खंडायत ग्राममें सूर्यभगवान्का एक मन्दिर है, यहाँके अर्चा-विग्रह कोट्यर्क कहलाते हैं। यहाँ मन्दिरमें भगवान् सूर्यकी गौरवर्ण चतुर्भुज मूर्ति है।

१३-दक्षिण भारतमें सूर्यनार-कोइलमें सूर्यभगवान्का एक प्रमुख मन्दिर है। मन्दिरमें भगवान् सूर्यके सामने बृहस्पतिकी प्रतिमा है, साथ ही भगवान् सूर्यका वाहन अश्व भी खड़ा है। यहीं एक दूसरे गृहमें चन्द्र-मङ्गलादि नवग्रहोंकी भी उत्थित-अवस्थाकी भव्य मूर्तियाँ हैं।

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एवं कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग, चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत् विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी, अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी प्रभृति सैकड़ों देव-देवियाँ काशी-वासीजनोंके योग-क्षेम, संरक्षण, दुरित एवं दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं। इनमें द्वादश आदित्योंका स्थान और माहात्म्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योंका संक्षिप्त माहात्म्य-चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है—

१-लोलार्ककी कथा

किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होंने सूर्यसे कहा—'सप्ताश्व! तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमें जाओ। धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, वैसा उपाय शीघ्र करो, किंतु राजाका अपमान न करना।'

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी पहुँचकर राजाकी धर्मपरीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, भिक्षु आदि बनकर उन्होंने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगी, किंतु राजाके कर्तव्यमें त्रुटि या राजाकी धर्मविमुखताकी गन्धतक उन्हें नहीं मिली।

उन्होंने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण शिवजीकी झिड़कीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्यागकर काशीमें ही रहनेका निश्चय किया। काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-सङ्गमके निकट भद्रवनी (भदैनी)में विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगों तथा दर्शनार्थियोंका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं।

२-उत्तरार्ककी कथा

बलिष्ठ दैत्योंद्वारा देवता बार-बार युद्धमें परास्त हो जाते थे। देवताओंने दैत्योंके आतङ्कसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुतिसे प्रसन्नमुख सम्मुख उपस्थित हुए भगवान् सूर्यसे देवताओंने प्रार्थना की कि 'प्रभो! बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय,

वैसा समाधायक उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करें।'

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधायक उत्तर है। इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वकर्माद्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाते समय छेनीसे इसे तराशनेपर जो प्रस्तर-खण्ड निकलेंगे वे तुम्हारे दृढ़ अस्त्र-शस्त्र होंगे। उनसे तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे।

देवताओंने वाराणसी जाकर विश्वकर्माद्वारा सुन्दर सूर्यमूर्तिका निर्माण कराया। मूर्ति तराशते समय उससे पत्थरके जो टुकड़े निकले उनसे देवताओंके तेज और प्रभावी अस्त्र बने। उनसे देवताओंने दैत्योंपर विजय पायी। मूर्ति गढ़ते समय जो गड्ढा बन गया था, उसका नाम उत्तरमानस (उत्तरार्ककुण्ड) पड़ा। वही कालान्तरमें भगवान् शिवसे माता पार्वतीकी यह प्रार्थना करनेपर कि **'वर्करीकुण्डमित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम्।'** (स्कन्दपु०, काशीखण्ड ४७। ५६) अर्थात् अर्ककुण्ड (उत्तरार्ककुण्ड) का नाम वर्करीकुण्ड हो जाय, वही कुण्ड वर्करीकुण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्तमानमें उसीका विकृतरूप 'बकरियाकुण्ड' है। यह अलईपुराके समीप है। उत्तररूपमें दी गयी शिलासे मूर्ति बननेके कारण उनका 'उत्तरार्क' नाम पड़ा। उत्तरार्कका माहात्म्य बड़ा ही अद्भुत और विलक्षण है।

३-साम्बादित्यकी कथा

किसी समय देवर्षि नारदजी भगवान् कृष्णके दर्शनार्थ द्वारकापुरी पधारे। उन्हें देखकर सब यादवकुमारोंने अभ्युत्थान एवं प्रणामकर उनका सम्मान किया; किंतु साम्बने अपने अत्यन्त सौन्दर्यके गर्वसे न अभ्युत्थान किया और न प्रणाम ही; प्रत्युत उनकी वेषभूषा और रूपपर हँस दिया। साम्बका यह अविनय देवर्षिको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इसका थोड़ा-सा इङ्गित भगवान्के समक्ष कर दिया।

दूसरी बार जब नारदजी आये, तब भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें गोपीमण्डलके मध्य बैठे थे। नारदने बाहर खेल रहे साम्बसे कहा—'वत्स! भगवान् कृष्णको मेरे आगमनकी सूचना दे दो।' साम्बने सोचा, 'एक बार मेरे प्रणाम न करनेसे ये खिन्न हुए थे। यदि आज भी इनका कहना न मानूँ तो और भी अधिक खिन्न होंगे, सम्भवतः शाप दे डालें। उधर पिताजी एकान्तमें मातृमण्डलके मध्य स्थित हैं। अनुपयुक्त स्थानपर जानेसे वे भी अप्रसन्न हो सकते हैं। क्या करूँ, जाऊँ या न जाऊँ? मुनिके क्रोधसे पिताजीका क्रोध कहीं अच्छा है'—यह सोचकर वे अन्तःपुरमें चले गये। दूरसे ही पिताजीको प्रणाम कर नारदके आगमनकी सूचना उन्हें दी। साम्बके पीछे-ही-पीछे नारदजी भी वहाँ चले गये।

नारदजीने गोपियोंमें कुछ विकृति आयी देख भगवान्से कहा—'भगवन्! साम्बके अतुल सौन्दर्यसे ही इनमें कुछ चाञ्चल्यका आविर्भाव हुआ प्रतीत होता है।' यद्यपि साम्ब सभी गोपीजनोंको माता जाम्बवतीके तुल्य ही देखते थे तथापि दुर्भाग्यवश भगवान्ने साम्बको बुलाकर यह कहते हुए तो शाप दे दिया कि 'एक तो तुम अनवसरमें मेरे निकट चले आये, दूसरा यह कि ये सब तुम्हारा सौन्दर्य देखकर चञ्चल हुई हैं, इसलिये तुम कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो जाओ।'

घृणित रोगके भयसे साम्ब काँप गये और भगवान्के समक्ष मुक्तिके लिये बहुत अनुनय-विनय करने लगे। तब श्रीकृष्णभगवान्ने पुत्रको निर्दोष जानकर दुर्दैववश प्राप्त रोगकी विमुक्तिके लिये उन्हें काशी जानेका आदेश दिया। तदनुसार साम्बने भी काशी-विश्वनाथजीके पश्चिमकी ओर कुण्ड बनाकर उसके तटपर सूर्यमूर्तिकी स्थापना की एवं भक्तिभावसहित सूर्याराधनसे रोग-विमुक्त हुए।

तभीसे सब व्याधियोंको हरनेवाले साम्बादित्य सकल सम्पत्तियाँ भी प्रदान करते हैं। इनका मन्दिर सूर्यकुण्ड मुहल्लेमें कुण्डके तटपर है।

४-द्रौपदादित्यकी कथा

प्राचीन कालमें जगत्कल्याणकारी भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पाँच पाण्डवोंके रूपमें प्रादुर्भूत हुए एवं जगज्जननी उमा द्रौपदीके रूपमें यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुईं। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए। महाबलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बड़ी विपत्तिमें पड़ गये। उन्हें राज्य त्यागकर वनमें जाना पड़ा। अपने पतियोंके इस दारुण क्लेशसे दुःखी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सूर्यने उसे एक दिव्य प्रभावशाली बटलोई दी और कहा कि

जबतक तुम भोजन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयेंगे वे सब-के-सब इस बटलोईके अन्नसे तृप्त हो जायँगे। यह सरस व्यञ्जनोंकी निधान है एवं इच्छानुसारी खाद्योंकी भण्डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाद यह खाली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमें सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त हुआ। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि विश्वनाथजीके दक्षिण भागमें तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी प्रतिमाकी जो लोग पूजा करेंगे, उन्हें क्षुधा-पीड़ा कभी नहीं होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षयवटके नीचे स्थित हैं, इनका काशीखण्डमें बहुत माहात्म्य है।

५-मयूखादित्य-कथा

प्राचीन कालमें पञ्चगङ्गाके निकट 'गभस्तीश्वर' शिवलिङ्ग एवं भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गलागौरीकी स्थापना कर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारों वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपतः त्रैलोक्यको तप्त करनेमें समर्थ हैं। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे। त्रैलोक्यको जलानेमें समर्थ सूर्य-किरणोंसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा।

इस प्रकार जगत्‌को व्याकुल देखकर जगत्‌के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देनेके लिये सूर्यके निकट गये। भगवान् शिवको उनकी तपस्याके प्रति महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होंने सूर्यको पुकारा, पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे। जब भगवान्‌ने अपने अमृत-वर्षी हाथोंसे सूर्यका स्पर्श किया, तब उस दिव्य स्पर्शसे सूर्यने अपनी आँखें खोलीं और उन्हें दण्डवत्-प्रणामकर उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'सूर्य! उठो, सब भक्तोंके क्लेशोंको दूर करो। तुम मेरे स्वरूप ही हो। तुमने मेरा और गौरीका जो स्तवन किया है, इन दोनों स्तवनोंका पाठ करनेवालोंको सब प्रकारकी सुख-सम्पदा, पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धि, शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे एवं प्रिय-वियोगजनित दुःख कदापि नहीं होंगे। तुम्हारे तपस्या करते समय तुम्हें मयूख (किरणें) ही दृष्टिगोचर हुए, शरीर नहीं, इसलिये तुम्हारा नाम मयूखादित्य होगा। तुम्हारा पूजन करनेसे मनुष्योंको कोई व्याधि नहीं होगी। रविवारके दिन तुम्हारा दर्शन करनेसे दारिद्र्य सर्वथा मिट जायगा—

त्वदर्चनान्नृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभविष्यति।
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारे त्वदीक्षणात्॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९। ९४)

—मयूखादित्यका मन्दिर मङ्गलागौरीमें है।

६-खखोल्कादित्य

पूर्वकालमें कद्रू और विनता—ये दोनों बहनें परस्पर खेल रही थीं। ये दक्ष प्रजापतिकी कन्याएँ और मरीचिनन्दन कश्यपकी धर्मपत्नियाँ थीं। उस खेलमें कद्रूने अपनी बहनसे कहा—'विनते! सूर्यके रथमें जो उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा सुना जाता है, उसका रूप कैसा है, जानती हो तो कहो। हम दोनों शर्त रखकर इसका निर्णय करें, जो जिससे पराजित हो, वह उसकी दासी हो। हमारी इस प्रतिज्ञामें ये सब सखियाँ साक्षी हैं।' इस प्रकार आपसमें शर्त लगाकर कद्रूने सूर्यके घोड़ेको चितकबरा बताया और विनताने श्वेत कहा। विनताके चले जानेपर कद्रूने अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा—'तुम मेरे वचनसे शीघ्र ही उच्चैःश्रवा घोड़ेके समीप जाओ और उसे श्याम रंगसे युक्त चितकबरा कर दो।' कद्रूके बुद्धिमान् पुत्रोंने उच्चैःश्रवाके पास जाकर उसके शरीरको जगह-जगहसे काले केशके समान चितकबरा कर दिया। कद्रू और विनता दोनोंने सूर्यके रथमें घोड़ेको कुछ-कुछ काले रंगसे युक्त अर्थात् चितकबरा देखा। तब विनताने कहा—'बहन! तुम्हारी ही बात सत्य निकली, अतः तुमने मुझे जीत लिया।' तबसे विनता कद्रूकी दासी हो गयी। तदनन्तर विनताके पुत्र गरुडने नागोंको अमृत देकर अपनी माताको दासीभावसे मुक्त किया। दासीपनसे छुटकारा मिलनेपर विनताने गरुडसे कहा—'बेटा! मैं दास्यजनित दुष्कृतको दूर करनेके लिये काशीपुरी जाऊँगी, वहाँ साक्षात् भगवान् विश्वनाथ चन्द्रमाका आभूषण धारण किये तारकमन्त्ररूपी नौकाके द्वारा दुस्तर संसारसागरसे सबको पार लगा देते हैं।'

माताकी यह बात सुनकर गरुडने नमस्कार करके कहा—'मैं भी भगवान् शिवसे सम्मानित काशीपुरीका दर्शन करनेके लिये चलूँगा।' तत्पश्चात् माताकी आज्ञा पाकर पक्षिराज गरुड उन्हींके साथ क्षणभरमें मोक्षभूमि वाराणसी-पुरीमें आ पहुँचे। वहाँ इन दोनोंने बड़ी भारी तपस्या की। अविचल इन्द्रियोंवाले पक्षिराज गरुडने शिवलिङ्गकी स्थापना

की और विनताने खखोल्क नामक 'आदित्य' को स्थापित किया। थोड़े ही दिनोंमें उन दोनोंकी तीव्र तपस्यासे काशीमें भगवान् शंकर और सूर्यदेव दोनों प्रसन्न हो गये। गरुडद्वारा स्थापित शिवलिङ्गसे उमानाथ भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होंने गरुडको बहुतसे अत्यन्त दुर्लभ वरदान दिये—'पक्षिराज ! मेरे यथार्थ रहस्यको, जिसे देवता भी नहीं जान सके हैं, तुम जान लोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिङ्ग गरुडेश्वरके नामसे विख्यात होगा। इसका दर्शन, स्पर्श और पूजन मनुष्योंको परम ज्ञान देनेवाला होगा। हम ही वह विष्णु हैं और वह विष्णु ही हम हैं, हम दोनोंमें तुम्हारी भेददृष्टि नहीं होनी चाहिये। तुम भगवान् विष्णुके श्रेष्ठ वाहन होकर स्वयं भी पूजनीय हो जाओगे।' अपने भक्त गरुडको इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये और गरुड भी भगवान् विष्णुके वाहन होकर भूमण्डलमें सबके लिये पूजनीय हो गये।

तदनन्तर एक दिन तपस्यामें संलग्न हुई विनताको देखकर शिवके ही दूसरे स्वरूप 'खखोल्कादित्य' नामक सूर्यदेव प्रकट हुए और उन्होंने विनताको शिवज्ञानसे युक्त पापनाशक वरदान दिया। वरदान देकर वे काशीमें ही रह गये और विनतादित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार काशीके विघ्नस्वरूप अन्धकारका नाश करनेवाले खखोल्क नामक आदित्य वहाँ निवास करते हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। काशीमें पैशङ्गिल (पिलपिला) तीर्थमें भगवान् खखोल्कादित्यका दर्शन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें नीरोग हो जाता है और मनोवाञ्छित वस्तुको प्राप्त करता है।

७-अरुणादित्य

विनता अपनी सपत्नी (सौतों) को गोदमें बच्चे खेलाते देख स्वयं भी बच्चेको गोदमें खेलानेकी अभिलाषा न त्याग सकी; अतः जो अण्डा अभी सेनेके योग्य था जिसकी अवधि पूरी नहीं हुई थी, उसे उसने फोड़ दिया। विकलाङ्ग शिशु ऊरु (जंघा) रहित होनेसे अनूरु एवं अवधिसे पूर्व ही अण्डा फोड़ देनेसे माँके प्रति क्रोधवश अरुण (लाल) होनेसे 'अरुण' कहलाया। अरुणने काशीमें तपस्या करते हुए सूर्यकी आराधना की। सूर्यने उसपर प्रसन्न हो उसे अनेक वर दिये एवं उसके नामसे स्वयं सूर्य 'अरुणादित्य' हुए।

सूर्यने कहा—'हे अनूरो ! तुम त्रैलोक्यके हितार्थ मेरे रथपर सदा स्थित रहो एवं मुझसे पहले अन्धकारका विनाश करो। जो मनुष्य वाराणसीमें विश्वेश्वरके उत्तर तुम्हारे द्वारा स्थापित अरुणादित्य नामक मेरी मूर्तिका अर्चन-पूजन करेंगे, उन्हें न तो दुःख होगा, न दरिद्रता होगी और न पातक लगेगा। वे न विविध प्रकारकी व्याधियोंसे आक्रान्त होंगे और न नाना प्रकारके उपद्रवोंसे पीड़ित होंगे। अरुणादित्य पाटन दरवाजा मुहल्लेमें त्रिलोचनमन्दिरमें स्थित हैं।

८-वृद्धादित्य

काशीमें प्राचीन कालमें वृद्धहारीत नामके एक महातपस्वी रहते थे। उन्होंने विशालाक्षीदेवीके दक्षिण ओर मीरघाटपर महातपकी समृद्धिके लिये सूर्यनारायणकी एक सुन्दर मूर्ति स्थापित की और उनकी आराधना की। उन्होंने अपनी अतुल भक्तिपूर्ण आराधनासे प्रसन्न हुए सूर्यसे वर माँगा—'भगवन् ! वृद्ध पुरुषमें तप करनेकी शक्ति नहीं रहती। यदि मुझे आपके अनुग्रहसे फिर तारुण्य प्राप्त हो जाय तो मैं उत्तम तप कर सकूँगा।' वृद्धहारीतके तपसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने वृद्ध तपस्वीकी वृद्धावस्था तत्क्षण मिटाकर उन्हें यौवन प्रदान कर दिया। यौवन प्राप्त कर हारीतने महान् उग्र तप किया। वृद्धादित्यके भक्तिभावपूर्ण अर्चन-पूजनसे वार्धक्य, दरिद्रता एवं विविध रोगोंसे मुक्ति पाकर बहुतोंने सिद्धि पायी है।

९-केशवादित्य

किसी समय आकाशमें संचरण कर रहे सूर्यनारायणने भगवान् आदिकेशवको बड़े श्रद्धाभावसे शिवलिङ्गका पूजन करते देखा। वे महान् आश्चर्यसे चकित हो आकाशसे उतरकर भगवान् केशवके निकट अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप बैठ गये। भगवान् केशवद्वारा की जा रही शिवपूजा समाप्त होनेपर सूर्यने उन्हें सभक्ति प्रणाम किया। भगवान्ने भी उनका उचित स्वागत-सत्कार कर पासमें बैठा लिया। अवसर पाकर सूर्यने पूछा—'भगवन् ! आपसे ही यह जगत् उत्पन्न होता है और आपमें ही लीन हो जाता है। आपका भी कोई पूज्य है—यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।'

भगवान् केशवने कहा—'भास्कर ! सब कारणोंके भी कारण देवाधिदेव महादेव उमापति ही एकमात्र पूज्य हैं। जो त्रिलोचनके सिवा अन्यकी पूजा करता है, वह आँखवाला

होनेपर भी अन्धा है। जिन लोगोंने एक बार भी पार्वतीपतिके लिङ्गकी पूजा की, उन्हें विविध दुःखोंसे भरे इस संसारमें दुःख नहीं होगा।'

भगवान् विष्णुके मुखसे शिवजीका ऐसा अद्भुत माहात्म्य एवं 'हे सूर्य! तुम भी विपुल तेजको बढ़ानेवाली परम लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा करो।' ऐसा उपदेश सुनकर सूर्य स्फटिकका लिङ्ग बनाकर उसकी पूजा करने लगे। तभीसे सूर्य आदिकेशवको अपना गुरु मानकर आदिकेशवके उत्तरमें आज भी स्थित हैं।

काशीमें भक्तजनोंके अज्ञानान्धकारका विनाश करनेवाले वे केशवादित्य पूजा-अर्चा करनेवालोंको सदा मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक केशवादित्यके माहात्म्यके श्रवणसे मनुष्यको पाप स्पर्श नहीं करते और शिवभक्ति प्राप्त होती है।

१०-विमलादित्य

विमल नामका एक क्षत्रिय था। वह बड़ा सत्कार्यकारी होनेपर भी प्राक्तन कर्मवश कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो गया। वह घर-द्वार, पुत्र-कलत्र, धन-दौलत सबका परित्याग कर काशी आया। उसने हरिकेशवन (जङ्गमवाड़ी) में हरिकेशेश्वरके निकट सूर्यमूर्ति स्थापित कर परम भक्ति-श्रद्धापूर्वक सूर्यकी आराधना की। वह कनेर, अड़हुल, सुन्दर किंशुक, लाल कमल, सुगन्धपूर्ण गुलाब और चम्पाके पुष्पों, चित्र-विचित्र मालाओं, कुङ्कुम, अगरु और कर्पूरमिश्रित लालचन्दन, सुगन्धित धूपों, कपूर और बत्तियोंकी आरार्ति, विविध प्रकारके सुमिष्ट नैवेद्यों, भाँति-भाँतिके फलों, अर्घ्यप्रदान एवं सूर्य-स्तोत्रोंद्वारा सूर्यकी पूजा करता था। इस प्रकार निरन्तर आराधना करनेसे उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए। उन्होंने वर माँगनेको कहा एवं यह भी कहा कि तुम्हारा कुष्ठरोग तो मिटेगा ही, उसके अतिरिक्त और भी वर माँगो। दण्डवत्-प्रणाम करते हुए विमलने कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो जो लोग आपके भक्तिनिष्ठ हों, उनके कुलमें कुष्ठ तथा अन्यान्य रोग भी न हों, उन्हें दरिद्रता भी न सतावे; आपके भक्तोंको किसी प्रकारका दुःख न हो, यही वर दें।'

विमलके उक्त वरोंको सुनते हुए सूर्यने 'तथास्तु' कहकर आगे कहा—'विमल! तुमने काशीमें जो यह मेरी मूर्ति स्थापित की है, इसकी संनिधिका मैं कभी त्याग नहीं करूँगा एवं यह मूर्ति तुम्हारे नामसे प्रख्यात होगी। सब व्याधियोंको दूर करनेवाली तथा सकल पापोंका विध्वंस करनेवाली विमलादित्य नामक यह प्रतिमा भक्तोंको सदा वर प्रदान करेगी।'

ये शुभप्रद (मङ्गलकारी) विमलादित्य काशीमें विराजमान हैं। उनके दर्शनमात्रसे कुष्ठरोग मिट जाता है।

११-गङ्गादित्य

गङ्गादित्य वाराणसीमें ललिताघाटपर विराजते हैं। उनके केवल दर्शनोंसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। भगीरथके रथका अनुसरण करती हुई भागीरथी जब यहाँ (काशीमें) पधारीं तो रविने वहींपर स्थित होकर गङ्गाकी स्तुति की। आज भी वह गङ्गाको सम्मुख कर रात-दिन उनकी स्तुति करते हैं। गङ्गादित्यकी आराधना करनेवाले नरश्रेष्ठोंकी न दुर्गति होती है और न वे रोगाक्रान्त ही होते हैं। इनका दर्शन पुण्यप्रद है।

१२-यमादित्य

यमेश्वरसे पश्चिम और आत्मवीरेश्वरसे पूर्व संकटा-घाटपर स्थित यमादित्यके दर्शन करनेसे मनुष्योंको यमलोक नहीं देखना पड़ता। भौमवारी चतुर्दशीको यमतीर्थमें स्नानकर यमेश्वर और यमादित्यके दर्शन कर मानव सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। प्राचीन कालमें यमराजने यमतीर्थमें कठोर तपस्या कर भक्तोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले यमेश्वर और यमादित्यकी स्थापना की थी। यमराजद्वारा स्थापित यमेश्वर और यमादित्यको प्रणाम करनेवाले एवं यम-तीर्थमें स्नान करनेवाले पुरुषोंको यामी (नारकीय) यातनाओंका भोगना तो दूर, यमलोकको देखनातक नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त यमतीर्थमें श्राद्धकर यमेश्वरका पूजनकर एवं यमादित्यको प्रणामकर मनुष्य पितृऋणसे भी उऋण हो जाता है।

ये बारह आदित्य पाप-राशिविनाशक हैं। इनके दर्शन-पूजन आदिसे मनुष्योंको यामी यातनाएँ नहीं होती हैं। इनके अतिरिक्त काशीमें गुह्यकार्क आदि और भी अनेक आदित्य हैं। सबकी पूजा-अर्चा लाभप्रद है। इनकी पूजा-अर्चा प्रत्येक नर-नारीको करनी चाहिये। बारह आदित्योंके आविर्भावकी संसूचक कथाको सुनने अथवा दूसरोंको सुनानेवाले मनुष्योंके पास दुर्गति कदापि नहीं आ सकती।

भगवान् सूर्य तथा कोणार्क-मन्दिर

(श्रीप्रशान्तकुमारजी रस्तोगी, एम्० ए०)

वैदिककालीन देवी-देवताओंमें भगवान् सूर्यका अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। इन्हें चराचर-विश्वका संचालक, घटी, पल, अहोरात्र, मास एवं ऋतु आदिका प्रत्यक्ष देवता,[१] ज्वलन्त प्रकाशकी अमूर्त अग्निके समान,[२] विराट् ब्रह्मकी आँखें,[३] दूरद्रष्टा,[४] सर्वद्रष्टा,[५] सम्पूर्ण जगत्का सर्वेक्षक,[६] समस्त चराचर- विश्वकी आत्मा,[७] आकाशका रत्न,[८] अन्धकारको चर्मकी भाँति लपेटकर उसका नाश करनेवाला,[९] बीमारीका नाश करनेवाला,[१०] देवताओंका दिव्य पुरोहित कहा गया है[११]।

भगवान् सूर्य सार्वभौम हैं[१२]। वे समस्त पापोंका नाश करनेवाले[१३] तथा शरीररूपी घरमें शयन करनेके कारण पुरुषरूप हैं[१४]। वे समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें विद्यमान,[१५] समस्त विश्वके प्राण एवं चेतना देनेवाले हैं[१६]। भगवान् सूर्य दीप्तिपुञ्ज हैं[१७]। उनके नेत्रकमल सुन्दर एवं पापसे परे हैं[१८]। उनकी उपासनासे अनेकों पुत्रोंकी प्राप्तिका उल्लेख है[१९]।

वैदिक साहित्यमें उल्लिखित भगवान् सूर्यका प्रभाव मूर्ति एवं स्थापत्यकलामें भी स्पष्टरूपसे परिलक्षित होता है। कोणार्कमें बना हुआ भगवान् सूर्यका मन्दिर इस तथ्यका जीवित उदाहरण है। जगन्नाथपुरीसे बीस मील उत्तर-पूर्वसमुद्र-तटके समीप सम्राट् नरसिंहदेव प्रथम (१२३८-१२६८ ई०) के राज्यकालमें बना कोणार्कका सूर्य-मन्दिर आज जीर्णावस्थामें भी अपने प्राचीन वैभवकी पराकाष्ठाकी गाथा गाता हुआ खड़ा है।*

कोणार्कका सूर्य-मन्दिर कालान्तर युगकी संरचना है। हिन्दू-विचारधाराके अनुसार भगवान् सूर्य अपने सात अश्वोंवाले रथपर विद्यमान होते हैं। कोणार्कका यह सूर्य-मन्दिर सूर्यरथके आकारको ध्यानमें रखकर तैयार किया गया था। इसकी नींवमें सात अलङ्कृत घोड़े रथको खींचते हुए-से प्रतीत होते हैं। यह मन्दिर एक ऊँचे धरातलपर बना है, जिसमें दस-दस फुट ऊँचे अलङ्कृत बारह पहिये हैं। इसका धुरा ग्यारह इंच तथा पहिये सोलह डंडोंवाले हैं। मन्दिरमें एक ओर चार अश्व तथा दूसरी ओर तीन अश्व बने हैं, जिनके आगेके दोनों पैर उठे हुए हैं, मानो वे अपनी गतिशीलताको प्रदर्शित करते हों। यह मन्दिर ८६५ फुट लंबे तथा ५४० फुट चौड़े आँगनमें बना हुआ है। इस आँगनके तीन ओर द्वार हैं जो आदमकद सुन्दर अश्वारोहियों या हस्त्यारोहियोंकी प्रतिमाओंसे सुसज्जित हैं। कहीं-कहींपर तो सिंहकी प्रतिमाएँ भी दर्शित होती हैं। ऊँची भूमिपर बना यह मन्दिर मुख्यतः दो भागोंमें स्तम्भ-मिलनसे निर्मित है। १-देवल तथा जगमोहन (जगमोहन अथवा सभामण्डप)। २-नट् एवं भोग (नट् या नाट्य एक ही रूप है)। इसमें नट् एवं भोग वस्तुतः कालान्तर युगकी ही संरचना है, जो इस समय प्रायः नष्ट ही हो गयी है।

विमान अथवा देवल—इस मन्दिरका विमान अथवा देवल बाईस फुट ऊँचा शिखरमय है। देवलका शिखर अब दुर्भाग्यवश नष्ट हो चुका है। देवल या गर्भगृहमें भगवान् सूर्यकी काले प्रस्तरकी प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। देवप्रतिमाका सिंहासन अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता है। इसका निचला भाग छोटे-छोटे हाथियोंकी मूर्तियोंसे अलङ्कृत है। देवलके

१-ऋग्वेद ९।११४।३; २-ऋग्वेद १०।७।३; ३-ऋग्वेद १०।९०।१३; ४-ऋग्वेद ७।३५।८; ५-ऋग्वेद १।५०।२; ६-ऋग्वेद ४।१३।३; ७-ऋग्वेद १।११५।१, यजुर्वेद ७।४२; ८-ऋग्वेद ७।६३।४, ६।५१।१; ९-ऋग्वेद ७।६३।१, ४।१३।४, १०।३७।४; १०-ऋग्वेद ४।२५।४, ६।५२।५; ११-ऋग्वेद ८।९०।१२; १२-ऋग्वेद १।११५।१, २।३३।१, १०।१२०।३, अथर्ववेद १३।१।१३-१४, १३।२।४३, १३।३।२-५; १३-शतपथब्राह्मण १४।१।२।२; १४-शतपथब्राह्मण १४।२।५।१८; १५-शतपथब्राह्मण १०।५।२।१; १६-तैत्तिरीयआरण्यक १।१४।१; १७-छान्दोग्योपनिषद् १।६।६; १८-छा० उ० १।६।६; १९-छा० उ०१।५।४।

* कोणार्क-मन्दिरका कोणादित्यके नामसे पुराणोंमें भी उल्लेख प्राप्त होता है और इसे भारतके प्राचीनतम प्रथम कोटिके मन्दिरोंमें मान्यता प्राप्त है। साम्बने भी कुष्ठ रोगके निवारणके लिये कोणादित्यकी उपासना की और [illegible] प्रतिमा भी स्थापित करवायी थी। बादमें भी अनेकोंबार इसका जीर्णोद्धार होता रहा और आज भी इसके पुनरुद्धारकी आवश्यकता है।

आधारपर बाहरकी ओर सीढ़ियोंसे सम्बन्धित तीन सहायक लघु मन्दिर हैं। इन तीनों मन्दिरोंमें आदमकद तथा सूक्ष्मतासे तराशी हुई भगवान् सूर्यकी प्रतिमाएँ हैं। ये लघु मन्दिर गहरे आलेकी भाँति हैं, जिनमें सूर्य-प्रतिमाके साथ-साथ सारथिका अङ्कन भी दृष्टिगोचर होता है।

जगमोहन—कोणार्कके इस भग्न मन्दिरमें जगमोहन अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है। जगमोहनकी निर्माण-शैली सादी है तथा 'वाड्' एवं 'पडि' नामक दो भागोंमें विभक्त है। इसमें निचले भागको 'वाड्' तथा ऊपरी भागको 'पडि' कहते हैं। 'वाड्' की आन्तरिक चौड़ाई उसकी ऊँचाईके बराबर है तथा छत पिरामिडकी भाँति है। इसमें मुख्य पूर्वीद्वार अत्यन्त अलङ्कृत है।

नाट्य अथवा नट्-मन्दिर—जगमोहनके सम्मुख ऊँची भूमिपर वर्गाकार पृथक्से बना हुआ कक्ष 'नट्-मन्दिर' के नामसे प्रसिद्ध है, वह बहुत अलङ्कृत है। विविध मुद्राओंमें नृत्य करती हुई नृत्याङ्गनाएँ तथा दीवारोंपर की गयी सज्जा आदि भव्य हैं।

भोगमन्दिर—इस मन्दिरका एक 'भोग-मन्दिर' भी था, जो अब नष्ट हो चुका है। नट् एवं भोग दोनों ही कालान्तर युगकी संरचनाएँ हैं। इनमें 'जगमोहन' तथा 'भोगमन्दिर' परस्पर पृथक्-पृथक् हैं।

भगवान् सूर्यके इस देवालयकी शिखर-सज्जा-हेतु अनेक विशाल अलङ्कृत पाषाणखण्ड भूमिपर गिरे हुए मिलते हैं। आश्चर्य इस बातका है कि ये पाषाणखण्ड ज्यों-के-त्यों पड़े मिलते हैं। देवालयका आमलक भी भूमिपर गिरा हुआ मिलता है। इन सब बातोंको दृष्टिगत करते हुए कतिपय विद्वान् इस सूर्यमन्दिरकी पूर्णतामें संदेह करते हैं, किंतु इसके विपरीत कुछ विद्वान् इसे १३वीं शताब्दी ई० पू० का पूर्ण वैभवशाली अलङ्कृत उत्कृष्ट मन्दिर मानते हैं। इस मन्दिरमें नाट्य एवं मुख्य मन्दिरके मध्य बीस फुटका अन्तराल है। इस अन्तरालके बीचोंबीच एक कीर्ति-स्तम्भ है। इस स्तम्भके शीर्षपर पहले एक अर्जुनप्रतिमा थी, जो अब जगन्नाथपुरीके मन्दिरमें है।

सूर्यमन्दिरकी निर्माणविधि—कोणार्कके इस सूर्यमन्दिरके परीक्षणसे ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम इसके गर्भगृहका निर्माण हुआ होगा। तदनन्तर कलाकारोंने देवलके सम्मुख दूसरा प्रकोष्ठ जोड़ा, जिसे सभामण्डप या जगमोहन कहते हैं। यहींपर उपासक लोग एकत्र होकर पूजा करते थे। मूल योजनामें गर्भगृह तथा अन्तराल (जगमोहन) के आभ्यन्तरका हिस्सा वर्गाकार है, परंतु बाहरी दीवारमें कई पुश्तानुमा प्रक्षेपण प्रत्येक ओर निकला दिखायी पड़ता है। समस्त दीवारोंके मध्य-भागमें प्रक्षेपण है, उस स्थितिमें प्रत्येक दीवार तीन भागोंमें विभक्त हो जाती है, जिसे 'रथ' कहते हैं। तीन रथोंके कारण यह 'त्रिरथ' के नामसे सम्बोधित किया गया। इसी प्रकार दीवारोंपर प्रक्षेपणकी संख्याके आधारपर 'पञ्चरथ', 'सप्तरथ' एवं 'नवरथ' योजनाके नामसे विख्यात है। प्रत्येक रथको कई फलिकाओंमें विभक्त किया गया है। उड़ीसाके स्थानीय कलाकारोंने इन प्रक्षेपणोंके कारण विविध नामोंसे मन्दिरके भागोंका पृथक्-पृथक् नामकरण किया, जिससे एक नवीन शैली चल पड़ी। ऐसा उप-विभाग कालान्तरमें प्रायः प्रत्येक मन्दिरमें देखनेको मिलने लगा।

शोकादि कबतक रहते हैं ?

श्रीब्रह्माजी भगवान्से कहते हैं—

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥

(श्रीमद्भा० ३।९।६)

'हे प्रभो ! तभीतक धन, घर और मित्रोंके कारण होनेवाले भय, शोक, कामना, तिरस्कार और लोभ रहते हैं, तभीतक समस्त दुःखोंका मूल 'यह मेरा है,' इस प्रकार झूठी धारणा भी रहती है, जबतक जीव तुम्हारे भयरहित चरणकमलोंकी शरण नहीं ग्रहण करता।'

लोकदेवता—

विकलाङ्गोंके लोकदेवता डिगीके कल्याणजी

जयपुरसे लगभग ७५ कि० मी० दूर, 'डिग्गी' राजस्थानका सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय तीर्थ है, जहाँपर विकलाङ्गोंके लोकदेवता 'कल्याणजी'के दर्शनार्थ अनेक लोग नित्य जाया करते हैं। यहाँ श्रावण, वैशाखकी पूर्णिमा और भाद्रपदकी एकादशीको विशेष मेले लगते हैं।

स्थानीय लोक-विश्वास है कि 'कल्याणजी' के अनुग्रहसे कुष्ठ आदि भयंकर रोग दूर हो जाते हैं और वह व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ तथा सर्वाङ्गसुन्दर हो जाता है। यहाँ कल्याणजीके मन्दिरमें हजारोंकी संख्यामें कुष्ठग्रस्त, अंधे, लूले तथा लँगड़े आदि विकलाङ्ग लोग जाकर मनौती मानते हैं और बहुतोंका कल्याण भी होते देखा गया है। इन विकलाङ्गोंके देवताकी महिमाका गान एक लोकगीतमें किया गया है, जिसे यहाँ आनेवाले दर्शनार्थी प्रायः सामूहिक रूपसे गाते दिखायी देते हैं—

अंधा ने आख्या दीज्यो, म्हारा डिगी पुरी का राजा।
निर्धन ने माया दीज्यो, म्हारा डिगी पुरी का राजा॥
कोढ़ी ने काया दीज्यो, म्हारा डिगी पुरी का राजा।
लँगड़ा ने पैर दीज्यो, म्हारा डिगी पुरी का राजा॥
बाँझ ने बेटा दीज्यो, म्हारा डिगी पुरी का राजा।
बाजै छै नोबत राजा, म्हारा डिगी पुरी का राजा॥

—आचार्य पं० कुलवंतराय दत्ता

कुमाऊँके लोकदेवता और लोकोपासना

उत्तर-प्रदेशका सुदूरवर्ती उत्तरी पर्वतीय-क्षेत्र कुमाऊँ नामसे प्रसिद्ध है। यह क्षेत्र हिमालयकी पर्वत-शृङ्खलाओंके मध्य स्थित है। यहाँके जनमानसमें ईश्वरके प्रति असीम श्रद्धा-विश्वास व्याप्त है। पञ्चदेवोपासनाके साथ-साथ श्रीराम, कृष्ण और हनुमान् आदि सभी देवताओंकी उपासना यहाँ होती है, तथापि शिव, दुर्गा एवं विष्णुकी मुख्यरूपसे पूजा-अर्चा होती है। किंतु छोटे-बड़े मन्दिर प्रायः सभी देवी-देवताओंके हैं। पर्वतकी चोटियोंपर श्रीदुर्गा अथवा चण्डिकाके तथा घाटियोंमें या छोटी-छोटी नदियोंके संगमोंपर शिवालय प्रधानरूपसे देखे जाते हैं। साथ ही प्रत्येक ग्रामके समीप या सुदूरवर्ती वनस्थलीके मध्य ऐसे भी थान (स्थान) हैं, जहाँ इस क्षेत्रके ग्राम-देवताओं या इष्ट देवताओंके प्रतीक विग्रह स्थापित हैं। अपनी अभीष्ट कामनाओंकी पूर्तिके लिये इन लोक-देवताओंकी विशेष ढंगसे पूजा-अर्चा भी यहाँके स्थानीय लोग करते हैं। मुख्य इष्टलोकदेवी-देवताओंमें भैरव, चण्डी, कालिका, वाराही, नन्दादेवी, नैनादेवी, जयन्ती, गुस्यानी देवी, सिद्धनाथ, गंगनाथ, ग्वाल्ल या गोरिया, भनरिया, सैम, ऐड़ी, पिङ्गलीनाग, व्यानधुरा तथा कालछिन् आदि हैं। इन देवी-देवताओंके छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए हैं अथवा कहीं-कहीं एक पेड़के नीचे त्रिशूल गाड़ दिये जाते हैं, दीप जलानेके लिये एक लोहेका दीपक रहता है, पेड़पर लाल, सफेद रंगके कपड़ोंके चीर बँधे रहते हैं तथा अनेक छोटी-छोटी घण्टियाँ लटकी रहती हैं। इन देवताओंकी प्रसन्नताके लिये लोग रुद्राष्टाध्यायी, दुर्गासप्तशतीका पाठ अथवा सत्यनारायणकी कथा करते-करवाते हैं। विशेष तिथि-महोत्सवोंपर मेला भी आयोजित होता है। बड़ी धूम-धामसे लोक-देवताओंके प्रतीकोंकी शोभायात्रा भी निकलती है।

लोक-विश्वासमें इन देवताओंको प्रसन्न करनेकी एक विशिष्ट परम्पराका प्रचलन है, तदनुसार ऐसी भी स्थानीय मान्यता है कि इन देवी-देवताओंका एक विशिष्ट व्यक्तिमें अवतरण अथवा प्राकट्य होता है। अग्निकी उद्दीप्त ज्वालाओंके साक्ष्यमें तत्तद् देवताओंके चरित्रकी महिमाके ओजस्वी गीत ढोल, नगाड़ों और हुड़के (डमरू-जैसा एक वाद्य) की गम्भीर ध्वनिके साथ गाये जाते हैं, जिसे सुनकर उस विशिष्ट व्यक्तिमें उस देवताकी स्फुरणा होती है और उसका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो कम्पन करने लगता है। वह अनेक असामान्य क्रियाएँ प्रदर्शित करता है और स्फुट शब्दोंमें लोगोंको उनके भूत-भविष्यके सम्बन्धमें बताता है। उसकी

चमत्कारी क्रियाओं तथा अद्भुत चेष्टाओंसे अभिभूत हो लोकमानसका उसके प्रति दैवीशक्तिसम्पन्नताका भाव जुड़ा हुआ है। वह उसकी प्रसन्नताके लिये संकल्पित होता है तथा उससे न्याय, रक्षा एवं कामनापूर्तिके लिये प्रार्थना करता है। यह सारी क्रियाएँ कुछ स्वल्प क्षणोंमें ही पूर्ण हो जाती हैं। अन्तमें पुनः उस देवताको कैलासके लिये प्रस्थित कराया जाता है और तब वह अग्निकी प्रदक्षिणा कर कुछ क्षणों बाद पूर्ववत् साधारण मानवकी स्थितिमें हो जाता है। उससे पूछनेपर वह तात्कालिक देवत्व-स्फुरणकी कुछ भी स्मृति न होनेके अनुभवको बताता है।

देव-जागरणकी इस प्रक्रियाको स्थानीय भाषामें 'जागर', 'खेला' तथा 'घणेली' आदि नामोंसे जाना जाता है। यह लोक-देवोपासना यहाँके नित्य उपासनाका अङ्ग नहीं है, अपितु किसी विशेष समयमें अथवा किसी विशिष्ट कामना तथा निमित्तके लिये ही प्रायः लोग इस परम्परासे जुड़े हुए हैं। नवीन फसल तथा अन्नका उपयोग इन देवताओंके थानों या स्थानोंमें अर्पण करनेके अनन्तर ही किया जाता है। इसी प्रकार यदि गाय बच्चा देती है तो उसका दूध १० या २२ दिनोंके बाद शुद्ध मानकर मन्दिरमें चढ़ाकर ही प्रयोगमें लाया जाता है। विवाह आदि घरमें कोई भी शुभ कार्य पड़नेपर उसके आदि तथा अन्तमें इन देवताओंको चढ़ावा चढ़ाया जाता है तथा उनके दर्शन किये जाते हैं।

ये थान अथवा मन्दिर रास्तेसे कुछ दूर पर्वतकी चोटियोंपर या पेड़ोंके झुरमुटोंके मध्य स्थित होते हैं। इन मन्दिरों अथवा पेड़ोंमें बँधे लाल, सफेद चीर (कपड़ेके टुकड़े) अथवा ध्वज दूरसे ही दिखायी देते हैं। मार्ग चलता पथिक यदि थानतक पहुँच भी नहीं पाता है तो मीलों दूरसे ही उनके थानका दर्शन कर हाथ जोड़ लेता है और फूल आदि उपचारोंके स्थानपर आस-पासकी झाड़ियोंके दो-चार पत्ते तोड़कर उस दिशाकी ओर चढ़ाकर अपनी श्रद्धा एवं भावना प्रकट करता है। बस इतनेसे ही उसका विश्वास पूर्ण उपासनाका रूप लेकर उसके लिये फलदायक हो जाता है।

वास्तवमें देवता तो भाव एवं भक्तिके ही वशीभूत होते हैं। भक्तकी जैसी भावना होती है, श्रद्धा-विश्वासपूर्वक वह वैसी ही फलवती भी हो जाती है। इसी आधारपर कुमाऊँमें अन्य देवी-देवताओंके साथ ही इन विशिष्ट स्थानीय लोक-देवताओंके प्रति भी श्रद्धाका भाव है। लोगोंको ऐसा विश्वास है कि इनके प्रसन्न हो जानेपर हमारी आकाङ्क्षाएँ पूर्ण हो सकती हैं। इस लोकोपासनाकी सुदीर्घ परम्परा मान्य एवं प्रचलित है। यहाँपर एक-दो देवताओंका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

(१) गोरिया या ग्वाल्ल देवता

कुमाऊँके लोक-विश्वासमें एक न्यायकारी देवताके रूपमें ग्वाल्ल देवताकी सर्वाधिक मान्यता है। यहाँ जगह-जगह इनके अनेक मन्दिर या थान बने हुए हैं तथापि ये स्थान अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। (१) ग्वेल चौड़ (चम्पावतके पास), (२) चितई (जिला अल्मोड़ा), (३) घोड़ाखाल (जिला नैनीताल), (४) कुमौड़ (पिथौरागढ़के पास), (५) रानीखेतके समीप उदयपुर, चित्रशिला (रानीबाग), (६) चौड़सिलांग, (७) ऊँचाकोट (नैनीताल), (८) कत्यूर, (९) ग्वेलडाना मल्ला ककलासों और (१०) कुमचौड़ (काली कुमाऊँ)।

स्थानीय इतिहासके अनुसार ग्वाल्लदेवताका सम्बन्ध कुमाऊँके प्रसिद्ध शासक कत्यूरीवंशसे जुड़ा हुआ है। इन्होंने राज्यमें व्याप्त सम्पूर्ण अत्याचार एवं अनीतियोंको समाप्त कर सुख-शान्तिका साम्राज्य फैला दिया। कुमाऊँके इतिहासमें यह समय १४वीं शदीका उत्तरार्धका माना जाता है। ये युद्धविद्यामें निपुण, भगवद्भक्त तथा तपस्वी भी थे और इन्होंने नाथपंथमें दीक्षित होकर नाथगुरुके रूपमें प्रतिष्ठा पायी। धीरे-धीरे अपनी न्याय, दयालुता, पराक्रम, तेजस्विताके कारण ये सिद्धयोगीके रूपमें माने जाने लगे। लोग इन्हें शंकरका अवतार मानकर इनकी पूजा-उपासनामें रत हो गये तथा एक न्यायकारी देवताके रूपमें इनकी सर्वत्र प्रसिद्धि हो गयी। आज भी विशेष अवसरों तथा नवरात्रों आदिमें स्थानीय परम्पराके अनुसार इनकी विशेष अर्चा-पूजा होती है[1]।

---

१. इस सम्बन्धमें हमें डॉ॰ मदनचन्द्र भट्ट, श्रीहरीशचन्द्र भट्ट तथा श्रीलोकमणिजीके लेख प्राप्त हुए हैं। स्थानाभावसे उन लेखोंको पूर्णरूपमें न दिया जा सका, उनका कुछ सार-भाग लेकर यह अंश तैयार [illegible] है।

(२) व्यानधुरा

(श्रीगौरीदत्तजी गहतोड़ी)

कुमाऊँके प्रसिद्ध शक्तिपीठ पूर्णागिरि-क्षेत्रके पश्चिम लगभग तीस किलोमीटर दूर शाल, शीशम आदि वृक्षोंकी सघन वनस्थलीके मध्य पर्वतके एक शिखरपर 'व्यानधुरा' देवताका प्रसिद्ध जाग्रत् स्थान है। इस देवताका प्राचीन नाम बाणधुरा या व्यानधद्या बताया जाता है। स्थानीय मान्यतामें व्यानधुराको धनुर्धारी भगवान् शिवका ही एक विशिष्ट स्वरूप माना जाता है। यहाँके स्थानीय जनोंके ये सर्वाधिक मान्य, पूज्य एवं अभीष्ट देवता हैं। इनकी प्रसन्नताके लिये रुद्राष्टाध्यायीके पाठकी विशेष महिमा है। इस स्थानमें एक आयताकार लिङ्ग है। कहा जाता है कि इसी लिङ्गका एक अंश यहाँसे ८० किलोमीटर दूर (ग्राम-गहतोड़ा) एक चोटीपर स्थापित है, जिसकी पूजा फटकशिलाके नामसे होती है।

व्यानधुराके मन्दिरमें धनुष और बाण चढ़ानेकी सुदीर्घ परम्परा है। धनुष, बाण तथा प्रत्यञ्चा लोहेके ही बनते हैं। यहाँ मन्दिरमें हजारोंकी संख्यामें धनुष-बाण हैं। लोग अपनी मनःकामना पूर्ण होनेके लिये यहाँ धनुष-बाण चढ़ाते हैं। स्थानीय परम्परामें इस देवस्थानकी अत्यन्त मान्यता है। स्त्रियाँ पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे यहाँ अखण्ड दीप जलाती हैं और भगवान्का ध्यानकर रात्रि-जागरण करती हैं। यहाँ प्रतिवर्ष उत्तरायणी, नवरात्रियों तथा विजयादशमी आदि अवसरोंपर विशेष पूजा-महोत्सव होता है। यहाँकी यात्रा दुर्गम है, किंतु भक्तजन व्यानधुरादेवका ध्यान करते हुए सहज ही यहाँ पहुँचकर उनके दर्शनोंसे अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

यह प्रसिद्धि है कि ऐड़ी नामक एक राजा शिवके परम भक्त थे। शत्रुओंसे युद्धके समय 'व्यानधुरा' नामक पर्वतकी चोटीकी ओरसे राजाको यह दिव्य वाणी सुनायी दी कि 'राजन्! तुम्हारी विजय होगी।' और राजाकी विजय हुई। राजाने यह चमत्कार देखकर शिवकी दीर्घ तपस्या की और बादमें वे ऐड़ी नामसे शिवरूपमें ही कुमाऊँमें पूजे जाने लगे। आज भी इनके अनेक स्थान बने हुए हैं।

ग्राम्य (ग्राम) देवता चक्रेश्वरी एवं उनकी लोक-शक्तियाँ

(डॉ० श्रीनरेशजी झा)

वैदिक एवं पौराणिक आख्यानोंसे यह स्पष्ट है कि सभी प्रकारकी उन्नतिके लिये शक्तिका संचय आवश्यक है और शक्तिकी प्राप्ति अपने इष्ट देवी-देवताओंकी आराधनासे ही सम्भव है। इतना ही नहीं, उग्र तपस्यामें भी देवोपासनाका मूल तत्त्व अन्तर्निहित है। वेदादि शास्त्रोंमें देवी-देवताओंके विविध रूप वर्णित हैं, जैसे—इष्टदेवता, कुलदेवता, ग्रामदेवता, स्थानदेवता, तीर्थदेवता आदि।

मिथिला प्राचीन कालसे ही शक्तिकी आराधना-स्थली रही है। यहाँके अधिकांश लोग प्रायः शाक्त हैं। वे पञ्चदेवोपासक भी हैं। यहाँके गाँवोंमें ग्रामदेवताके रूपमें इन्हीं देवी-देवताओंको विशेष स्थान प्राप्त है।

यहाँ गौतमकुण्डके निकट सीतामढ़ी मण्डलमें चकौती ग्राममें 'भगवती चक्रेश्वरी' का एक सिद्ध पीठ है। भगवती चक्रेश्वरी देवीके नामका उल्लेख श्रीशिव-परशुराम-संवादात्मक 'कालिकाकुलसर्वस्व'में कालीसहस्रनामके अन्तर्गत मिलता है। वहाँ महाचक्रेश्वरी, नवचक्रेश्वरी, राजचक्रेश्वरी आदि नाम मिलते हैं।

प्राचीन त्रिपुरारहस्यके अनुसार काली (महात्रिपुरसुन्दरी) के भेदोंमें ही 'चक्रेश्वरी' आती हैं, वहाँ महाशक्तिके प्रधान भेद इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—१-कुमारी, २-त्रिरूपा, ३-गौरी, ४-रमा, ५-भारती, ६-काली, ७-चण्डिका, ८-दुर्गा, ९-भगवती कात्यायनी और १०-ललिता। महाशक्तिकी ही अपर संज्ञा महात्रिपुरसुन्दरी है। यथा—

एवमादौ विसृष्टा सा महात्रिपुरसुन्दरी।
नवशक्तीरसृजत शक्त्यौघस्य विसर्जने॥

अपरं च—

आद्या कामेश्वरी नित्या द्वितीया भगमालिनी।
विन्दुचक्रेश्वरी या सा महात्रिपुरसुन्दरी॥
विनियुक्ता मूलदेव्या शक्तीनामभिधाकृतौ।
या तस्यै सर्वचक्राणामीश्वरीत्वं ददौ परा॥

इस प्रकार 'चक्रेश्वरी' नामकी चर्चा अनेक स्थलोंपर प्राप्त होती है। इतना ही नहीं, त्रिपुरोपनिषद्में इससे सामञ्जस्य

रखनेवाली अनेक ईश्वरीयुक्ता देवियोंकी चर्चा है। यथा—लक्ष्मीश्वरी, रत्नेश्वरी, सुधापीठेश्वरी, पारिजातेश्वरी, पञ्चबाणेश्वरी, कोशेश्वरी आदि।

चक्रेश्वरी भगवतीका तान्त्रिकी चक्र-पूजासे सम्बन्ध रहनेके कारण इनका अभिधान भी सार्थक है। इनकी पूजा पञ्चभगिनीसहित होती है। तन्त्रसाहित्यमें चक्रेश्वरी देवीकी व्यापकता पूर्णरूपमें है। शाक्तप्रमोदमें कालीतन्त्र-सहस्रनाम-प्रकरणमें एक रोचक विवरण आया है, जिससे सिद्ध होता है कि श्रीचक्रयुता यन्त्रमयी ही चक्रेश्वरी हैं।

आख्यान इस प्रकार है—एक समय अपनी प्राणप्रियासे वियुक्त होकर भगवान् सदाशिव उनके दर्शनार्थ तपस्या कर रहे थे। कालीजीको चिन्ता हो गयी कि 'भगवान् सदाशिव मेरे लिये चिन्तित हैं।' काली यन्त्र-प्रस्तारकी बुद्धि देती हैं, उस चक्रके दर्शनार्थ अनेक युग बीत जाते हैं, तभी महाश्रीचक्र-देवीकी महिमा गायी जाती है। उनके महत्त्वका वर्णन मूलरूपसे यों है—

दर्शनार्थं तपस्तेपे सा वै कुत्र गता प्रिया।
मम प्राणप्रिया देवी हा हा प्राणप्रिये शिवे॥
किं करोमि क्व गच्छामि इत्येवं भ्रमसंकुलः।
तस्याः काल्या दया जाता मम चिन्तापरः शिवः॥
यन्त्रप्रस्तारबुद्धिस्तु काल्या दत्तातिसत्वरम्।
यन्त्रयागं तदारभ्य पूर्वं विन्दुत्वगोचरम्॥
श्रीचक्रयन्त्रप्रस्ताररचनाभ्यासतत्परः।
इतस्ततो भ्राम्यमाणस्त्रैलोक्यं चक्रमध्यकम्॥
चक्रपारदर्शनार्थं कोट्यर्बुदयुगं गतम्।
भक्तप्राणप्रिया देवी महाश्रीचक्रनायिका॥

(शाक्तप्रमोद)

मातङ्गी-तन्त्रके अन्तर्गत सहस्रनाममें भी चक्रेश्वरीकी शब्दान्तरसे चर्चा आयी है। यथा—'**चक्रवर्तिवधूश्चित्रा चक्राङ्गी चक्रमोदिनी।**' इसी प्रकार बगलामुखी-तन्त्रमें भी सहस्रनामके अन्तर्गत—'**षट्चक्रभेदनकरी षट्चक्रस्थस्व-रूपिणी**' आया है। त्रिपुरभैरवी-तन्त्रमें देवीके सहस्रनाममें '**षट्चक्रक्रमवासिनी**', '**चक्रदेहा**', '**चक्रहारा**', '**चक्रकंकालवासिनी**' आदि नाम आये हैं। ये नाम चक्रेश्वरीके ही द्योतक हैं।

चक्रेश्वरी भगवतीका आविर्भाव

मिथिलाके ग्रामदेवताके रूपमें स्वयं अवतीर्णा अङ्कुरिता भगवती चक्रेश्वरी अपनी विलक्षणताके लिये जन-जनमें प्रसिद्ध हैं। इनके विषयमें एक आख्यान यहाँ अत्यन्त प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि देवी-इच्छासे नवाङ्कुरित रक्ताभप्रस्तरके गोलाकार टुकड़े अथवा चिपटे छोटे-छोटे दानोंके रूपमें प्रसूत होते रहते थे। उनकी संख्या इतनी हो गयी थी कि वहाँ हजारों प्रस्तराकार विग्रह एकत्रित हो गये थे। ऐसी प्रभावकारी विलक्षण स्थितिसे ग्रामीण सर्वथा सुपरिचित हैं। भगवती चक्रेश्वरी सर्वदा चाहे वह महामारीका अवसर हो, अनावृष्टि हो, अतिवृष्टि हो या अन्य आपदाएँ आयी हों, भक्ति-भावनासे प्रार्थना करनेपर रक्षा करती हैं। मिथिलाके ग्रामीणजन श्रद्धा-भक्तिपुरस्सर इनकी यथाशक्ति पूजा करते हैं। प्रतिवर्ष आषाढ़ पूर्णिमाको या आगे-पीछे इनकी वार्षिकी पूजा होती है, जिसमें विशिष्ट पूजाके साथ कुमारी-वटुक-ब्राह्मण-भोजन विधि-विधानसे सम्पन्न होता है।

श्राद्ध-महिमा

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः। प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेषु तर्पिताः॥
आत्मानं गुर्विणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा। दोहदेन तथा देवाः श्राद्धैः स्वांश्च पितॄन् नृणाम्॥

(गरुडपुराण)

'वसु, रुद्र, आदित्यगण, पितर और श्राद्ध-देवता—ये मनुष्योंसे संतुष्ट होकर पितरोंकी तृप्ति करते हैं। जिस प्रकार गर्भवती स्त्रियाँ दोहद (गर्भ) की रक्षाद्वारा अपनी रक्षा करती हैं, उसी प्रकार देवगण श्राद्धद्वारा अपनी तथा मनुष्योंकी रक्षा करते हैं।'

आध्यात्मिक उन्नति और मनुष्य-जीवनको सफल बनानेवाले गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सत्साहित्यका घर-घर प्रचार-प्रसार करें, करावें।

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

सम्पूर्ण सटीक महाभारतका पुनर्मुद्रण

भारतीय ऐतिहासिक वाङ्मयका अमूल्य ग्रन्थ-रत्न महाभारत, जिसकी बहुत दिनोंसे अत्यधिक माँग थी, वह अब सम्पूर्ण सटीक छः खण्डोंमें प्राप्य हो गया है। इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका 'विश्वकोश' कहा जाता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके महान् उपदेशोंके अतिरिक्त प्राचीन घटनाओंका सच्चा उल्लेख तो है ही, साथ ही ज्ञान, वैराग्य, भक्तियोग, नीति, सदाचार, अध्यात्म आदि विषयोंका विशद एवं सारगर्भित विवेचन भी है। इच्छुक सज्जनोंको मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

महाभारत	प्रथम खण्ड	हिन्दी टीका-सहित	सचित्र	सजिल्द	मूल्य ४०.००	डाकखर्च अलगसे
,,	द्वितीय खण्ड	,,	,,	,,	,, ५५.००	,,
,,	तृतीय खण्ड	,,	,,	,,	,, ५५.००	,,
,,	चतुर्थ खण्ड	,,	,,	,,	,, ६५.००	,,
,,	पञ्चम खण्ड	,,	,,	,,	,, ५०.००	,,
,,	षष्ठ खण्ड	,,	,,	,,	,, ५५.००	,,

संक्षिप्त महाभारत—सजिल्द दो खण्डोंमें उपलब्ध है। कुल पृष्ठ-सं॰ १६९१, रंगीन चित्र २, रेखा-चित्र ९७८, मूल्य ७०.०० (सत्तर रुपये) मात्र, डाकखर्च अलगसे।

(इसमें सम्पूर्ण ग्रन्थका सरल हिन्दीमें संक्षिप्त अनुवाद है।)

१- श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्व-विवेचनी—हिन्दी टीका—टीकाकार—परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका, (राजसंस्करण) मूल्य ३०.०० (तीस रुपये) मात्र, डाकखर्च अलगसे।

श्रीगोयन्दकाजीद्वारा प्रणीत यह 'तत्त्व-विवेचनी'-टीका' अन्यतम है। इसमें टीकाकारने गीताकी विस्तृत व्याख्यासहित अनेक गूढ़ तात्त्विक रहस्योंको सरल, सुबोध भाषामें उद्घाटित किया है। इस प्रामाणिक एवं उपयोगी और लोकप्रिय ग्रन्थके अबतक अनेकों संस्करण बहुसंख्यक—लाखों प्रतियोंके रूपमें निकल चुके हैं। मुद्रणकी आधुनिक प्राविधिद्वारा २२''×२९''के आकारमें मुद्रित, ऑफ्सेटकी स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त तथा सुन्दर भावपूर्ण बहुरंगे चित्रोंसे सुसज्जित यह विशेष संस्करण पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हुए गीताके पठन-पाठनकी ओर उन्हें अधिकाधिक प्रवृत्त करेगा, ऐसी आशा है। विश्वास है कि प्रेमी पाठक और जिज्ञासुजन इससे विशेष लाभ उठायेंगे।

२- श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्व-विवेचनी—टीकाकार—परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका, (पठनीय सामग्री दोनोंकी समान है।)

गीताविषयक २५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें विवेचनात्मक ढंगकी हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ-सं॰ २०००, (साधारण संस्करण) मूल्य १५.०० (पंद्रह रुपये) मात्र, डाकखर्च अलगसे।

श्रीमद्भगवद्गीता—साधक-संजीवनी-टीका—बृहदाकार, परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकृत, सचित्र, सजिल्द, मूल्य ८०.०० (अस्सी रुपये) मात्र, डाकखर्च अलगसे।

परम श्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजने इस अगाध गीतार्णवमें गहरा अवगाहन कर अनेक गुह्यतम अमूल्य रत्न ढूँढ़ निकाले हैं, जिन्हें उन्होंने इस 'साधक-संजीवनी' हिन्दी-टीकाके माध्यमसे साधकोंके कल्याणार्थ उदार-हृदयसे वितरित किया है। गीताकी यह टीका हमें अपनी धारणासे दूसरी टीकाओंकी अपेक्षा बहुत विलक्षण प्रतीत होती है। श्रीस्वामीजीने यह टीका किसी दार्शनिक विचारकी दृष्टिसे अथवा अपनी विद्वत्ताका प्रदर्शन करनेके लिये नहीं लिखी है, अपितु साधकोंका हित कैसे [illegible] वेश, भाषा, हो—इसी दृष्टिसे लिखा है। परम शान्तिकी [illegible]

मत, सम्प्रदाय आदिका क्यों न हो, यह टीका संजीवनी-बूटीके समान है। परमात्म-प्राप्तिके अनेक सरल उपायोंसे युक्त, साधकोपयोगी अनेक विशेष और मार्मिक बातोंसे अलङ्कृत तथा बहुत ही सरल एवं सुबोध भाषा-शैलीमें लिखित प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

आकर्षक मजबूत जिल्द, सुनहरे अक्षरोंसे युक्त आवरण-पृष्ठ, स्वच्छ, सुन्दर आकर्षक छपाई तथा अनेक कलात्मक एवं भावमय नयनाभिराम बहुरंगे चित्र इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। इच्छुक सज्जनोंको मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

गीता-दर्पण—परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा लिखित सचित्र, सजिल्द, मूल्य २०.०० (बीस रुपये) मात्र।

श्रद्धेय श्रीस्वामीजीने गीता-तत्त्व-सागरमें अवगाहन कर अनेक तत्त्व-रत्नोंको खोज निकाला है, जिन्हें विविध प्रकाशनोंके रूपमें जनताको वितरित कर दिया है। उनसे भावुक जनता लाभ उठा रही है। उन्हीं रत्नोंमेंसे यह एक अमूल्य रत्न 'गीता-दर्पण' भी है। यह 'यथा नाम तथा गुण' इस उक्तिके अनुसार सचमुच गीता-तत्त्वको प्रत्यक्ष देखनेके लिये दर्पण-सदृश ही है।

श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य—हिन्दी-अनुवाद-सहित, मूल श्लोक, भाष्य, भाष्यार्थ, टिप्पणी तथा श्लोकोंके पदोंकी अकारादिक्रम-सूचीसहित। अनुवादक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका, सचित्र, सजिल्द, मूल्य १८.०० (अठारह रुपये)। श्रीगीताजीका शांकरभाष्य समस्त भाष्य और टीकाओंमें मुकुटमणि माना जाता है, वेदान्तके पथिकोंके लिये तो यह परमोत्कृष्ट पथप्रदर्शक है। उसीका विद्वान् लेखक महोदयने सरल हिन्दी अनुवाद किया है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर २७३००५**

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,
२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,
३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—
रामदास जालान,
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय, पता-नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता, (सन् १८६०के विधान २१के अनुसार) रजिस्टर्ड-धार्मिक संस्था।

मैं रामदास जालान गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

सौर वैशाख, वि० सं० २०४७

रामदास जालान
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)
प्रकाशक